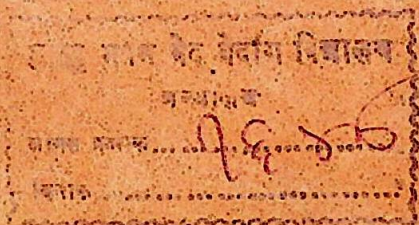


छवि

की

किरणें

H.P. 924



महामहोपाध्याय  
गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

0152, 1N38, 1

M1 प्रकाशक

श्रीगिरिधर साहित्यिक शोध संस्थान

वाराणसी

१  
२२९

12975

87



0152, LN38, L

M1

2975

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

[illegible]





छवि

की

किरणें

स्वर्गीय महामहोपाध्याय—

पण्डित

श्री गिरिधर शर्माजी चतुर्वेदी

सम्पादक :

शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी

प्रवक्ता

प्राच्यविद्याधर्मविज्ञानसंकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

# छवि की किरणें

प्रकाशन वर्ष १९८१

प्रकाशन :

श्री गिरिधर साहित्यिक शोध संस्थान

वाराणसी

( श्री लक्ष्मीपति मिश्र चैरिटेबिल ट्रस्ट की  
उदार आर्थिक सहायता से प्रकाशित )

0152,1N38,1  
ML

मुख्य वितरक :

किशोर विद्या निकेतन

भदैनो, वाराणसी-१

मूल्य : १० रुपये

❀ मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ❀

वाराणसी ।

आगत क्रमांक..... 2196.....

मुद्रक :

।दनांक.....

देववाणी प्रेस

बड़ी मलदहिया, वाराणसी



६२

### सरणि—

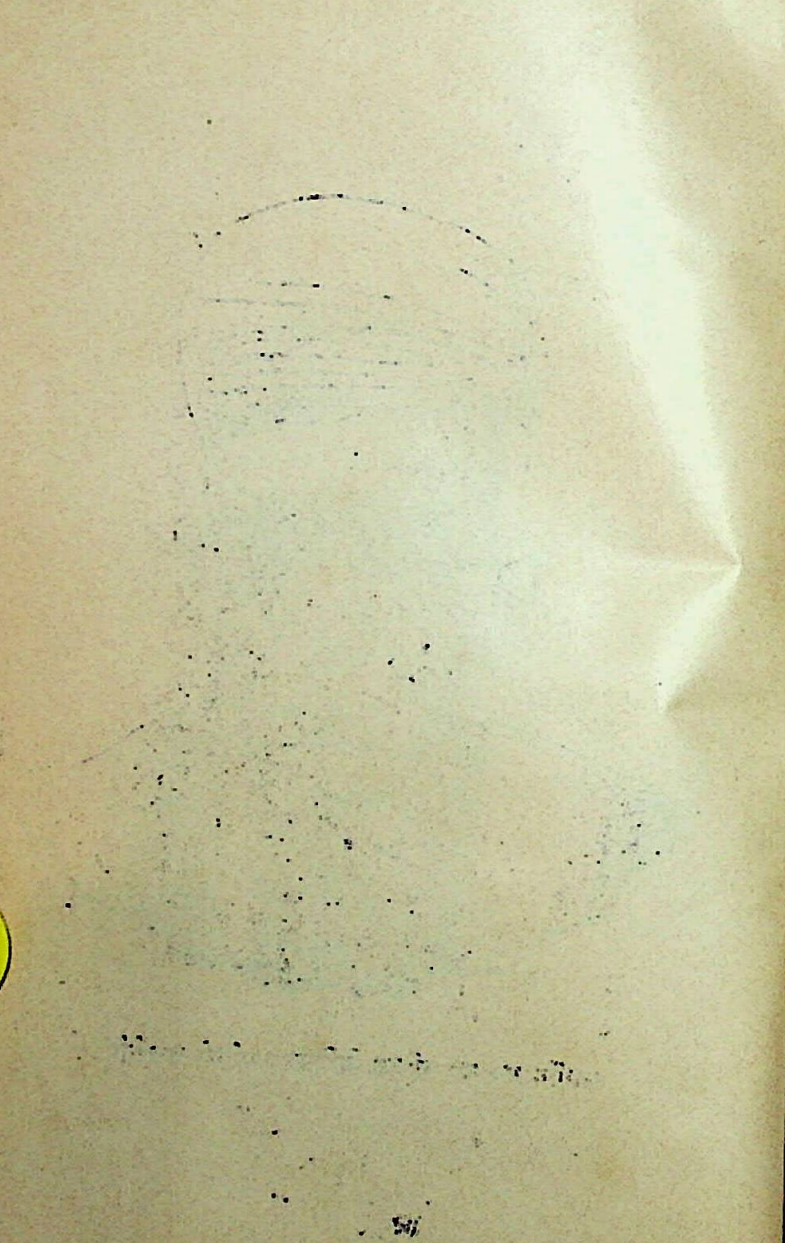
१. पुरोवाक्—शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी
२. आरम्भ वचन—आचार्य पण्डित श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र
३. एक और छवि—श्री महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी
४. छवि की किरणें—स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित श्री गिरिधर  
शर्माजी चतुर्वेदी

*[Faint, illegible text visible through the paper, likely bleed-through from the reverse side.]*





स्वर्गीय म० म० पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी





## पुरोवाक्

स्वर्गीय पूज्य पिताजी की काव्य-पुस्तक "छवि की किरणें" के पुरोवाक् लिखते समय मुझे अपनी बाल्यावस्था की अनेक मनोरम स्मृतियों ने घेर लिया है। अपने यहाँ जयपुर में आने वाले कई वृद्ध पारिवारिक जन, जो प्रायः अर्द्धशिक्षित थे 'कवीसुर' शब्द बोलते थे। एक बार मेरे मामाजी को पिताजी ने बड़े जोर से फटकारा कि तुम क्या 'कवीसुर-कवीसुर बोलते हो, कवीश्वर क्यों नहीं बोलते', मुझे भी तब समझ में आया कि यह कवीसुर नहीं, कवीश्वर है। जयपुर में अनेक कवीसुर या कवीश्वर कहलाते थे। एक मास में एक दिन राजमहल में जाने के लिए पिताजी चूड़ीदार पजामा पहिनते थे। उसे धारण करने में बड़ी कठिनाई होती थी, घर के सभी लोग यह दृश्य देखने वहाँ एकत्रित हो जाते थे। समय नजदीक आने पर आस-पास के कई कवीश्वर पिताजी के साथ जाने के लिए हमारे घर पर एकत्रित होने लगते थे। एक बार जब तैयार होकर पिताजी अन्य कवीश्वरों के साथ राजमहल में जाने को उद्यत हुए तो वहाँ सुनाने के लिए जो कविता बनायी गयी थी, उसकी तलाश हुई। वह कागज नहीं मिला। सभी घर के लोग फटकारे जा रहे थे। एक आतंक-सा सब पर छा गया था। अन्ततः वह कागज जब नहीं मिला तो पिताजी ने कलम, दावात और कागज मँगवाकर जल्दी-जल्दी में समस्या-पूर्ति के दो कवित्त लिखे। उन्हें सुवाच्य लिखने को मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीमान् देवीदत्तजी को दिया गया। उनके अक्षरों का सौन्दर्य बहुचर्चित और प्रशंसित तभी था। बाद में पिताजी ने

स्वयं बतलाया कि वे दो घनाक्षरी छन्द खोये हुए कागज वाले ही थे, जो उन्हें याद हो गये थे ।

पिताजी की स्मरणशक्ति का लोहा प्रायः सभी विद्वान् मानते थे । सूरदास के सैकड़ों पद, तुलसीदास के लम्बे-लम्बे प्रसंग, केशवदास, बिहारी आदि के छन्द बातों ही बातों में धाराप्रवाह रूप से उनकी वाणी से बह निकलते थे और श्रोता जो भी वहाँ होते मन्त्रमुग्ध होकर सुनने में तन्मय हो जाते । संस्कृत के छन्दों की तो कोई गणना ही नहीं कि उनको कितने याद थे । अपने व्याख्यानों में वे जिन श्लोकों के उद्धरण देते थे, बड़े-बड़े मूर्धन्य विद्वान् भी कागज-कलम लेकर उनसे प्रार्थना करते दिखायी देते थे कि 'आपने जो वह श्लोक कहा उसे कृपया फिर से कह दीजिये ।' वेदों के छन्द, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि, श्रीहर्ष, यही नहीं ऐसे नाटक जो प्रायः अप्रसिद्ध हैं, उनके पद्य उनसे सुनने को मिलते थे । एक बार अपने मित्र स्वर्गीय कविशिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्रीजी को उन्होंने उन्हीं का बनाया पद्य सुनाया, आश्चर्य तब हुआ जब श्री भट्टजी उसे लिखाने के लिए कहने लगे और पिताजी ने यह उत्तर दिया कि—“क्या गजब करते हो, यह तो तुम्हारा ही बनाया हुआ पद्य है, तुम्हारी पुस्तक में छपा भी है ।” श्री भट्टजी महाराज ने स्वीकार किया कि उनको अपने बनाये सहस्रों पद्यों में-से केवल दहाई में ही याद हैं ।

पद्य बोलते हुए उनका गला कई बार भर आता था भावोद्रेक में । अपने नित्य-कर्म में ही वे जितने स्तोत्रों का पाठ करते थे उनकी संख्या ही शताधिक थी । छन्दों के अतिरिक्त गद्य भी उन्हें कितने याद थे यह थाह नहीं मिल पाता था । शांकरभाष्य, महाभाष्य, शब्देन्दु, परिभाषेन्दु, नाटकों के गद्य, समय-समय पर



पूरी भंगिमाओं के साथ वे बोलते थे और उनके मुँह से सुनने पर उसके रचयिता का विलक्षण मोहक चित्र मानस-पटल पर खिचता था ।

श्रद्धेय शुद्धाद्वैतालंकार स्वर्गीय श्रीमान् पण्डित पुरुषोत्तमजी चतुर्वेदी, श्रीमान् काशीनरेश डा० विभूतिनारायणसिंहजी के संरक्षण में रामनगर में रहते हुए “विद्यालय-पत्रिका” नामक त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका का सम्पादन प्रकाशन जब करने लगे तो उन्होंने पत्रिका के अंकों में प्रकाशित करने के लिए पिताजी की कविताओं की कापी ले ली । अनेक छन्द, अनेक अंकों में उक्त पत्रिका में छपे । उनका अकस्मात् स्वर्गवास हो गया और वह कापी उनके सामान के साथ जयपुर चली गयी । अनेक बार प्रयत्न और श्रम के उपरान्त वह कापी जब मिली तब मैंने उसकी दो, तीन प्रतिलिपियाँ कर लीं । मूल प्रति में पिताजी के, भाईसाहब के तथा मेरे अक्षर हैं ।

पूज्य पिताजी का जन्मशताब्दीवर्ष विक्रम संवत्सर के अनुसार चल रहा है और ईसवी सन् के अनुसार १९८१ से प्रारम्भ हो रहा है । इस अवसर पर १. “वैदिक वर्ण-व्यवस्था और श्राद्ध”, २. “भारतीय-दर्शन में आत्मा”, ३. “भगवान् श्रीकृष्ण और शिवतत्त्व”, ४. “प्रत्यालोचन”, नामक ग्रन्थ मुद्रित हो चुके हैं । “छवि की किरणें” भी उसी शृङ्खला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है । इस पुस्तक का नामकरण मैंने ही किया है, श्रीरामाधीन चतुर्वेदीजी तथा श्रीमहेन्द्रजी से भी इस विषय में विचार और समर्थन मिला ।

माननीय श्रद्धेया डा० पद्मा मिश्र महोदया, श्रीमान् सुमन्तकुमार मिश्र महोदय, श्रीमान् नरेशचन्द्र मिश्र महोदय ने स्वर्गीय स्वनामधन्य श्रीमान् लक्ष्मीपति मिश्र महोदय की स्मृति में संस्थापित चैरिटेबिल ट्रस्ट के द्वारा इस रचना के प्रकाशन में सहायतार्थ एक सहस्रमुद्रा

प्रदान की, एतदर्थ हम उक्त ट्रस्ट के उक्त ट्रस्टी महानुभावों के हृदय से कृतज्ञ हैं और उन्हें अनेक धन्यवाद समर्पित करते हैं। स्वर्गीय श्रीमान् लक्ष्मीपति मिश्र महानुभाव सच्चे अर्थों में महापुरुष थे, वे इस रचना के रचयिता के समकालीन थे !

वर्तमान में हिन्दी जगत् के भीष्म पितामह श्रद्धेय आचार्य श्रीमान् पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्रजी महोदय ने अपनी अत्यन्त रुग्णावस्था में भी मेरी 'आरम्भ वचन' लिखने की प्रार्थना को बड़े हर्ष से स्वीकार किया, इतना ही नहीं मेरे बार-बार यह प्रार्थना करने पर भी कि "आप बोलते जायें मैं लिख लेता हूँ" उन्होंने अपने ही अक्षरों में "आरम्भ वचन" लिख कर प्रदान करने का कष्ट स्वीकार किया। एतदर्थ हम उन्हें अत्यन्त विनम्रता पूर्वक प्रणाम निवेदन करते हैं। मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीमान् देवीदत्तजी चतुर्वेदी महानुभाव ने सदैव मुझे इन सभी रचनाओं को प्रकाश में लाने के लिए उत्साहित और प्रेरित कर आध्यात्मिक शक्ति दी है। मेरे भागिनेय श्रीमान् महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी ने अपने वाराणसी आगमन के अनन्तर रुचिपूर्वक परामर्श दिये। इस रचना के लिए समालोचनात्मक लेख भी लिखा, सम्पादन कार्य में भी सहयोग दिया। मेरी पुत्री अन्नपूर्णा ( प्रीति ) चतुर्वेदी ने प्रतिलिपि आदि में हाथ बैठाया।

आशा है महामनीषि के सर्वथा छुपे हुए कर्तृत्व को सामने लाने वाली इस रचना को सहृदय समाज समुचित रूप से स्वीकार कर हमारा मार्गदर्शन करेगा।

B ३१, F. F. प्रिंसिपल कालोनो  
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी }  
१-१-८१

विनीत  
शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदी



## आरम्भवचन

आचार्य पण्डित श्रीविश्वनाथप्रसादजी मिश्र

गोकुलवासी महामहोपाध्याय श्रीगिरिधरशर्माजी चतुर्वेदी से मैं तभी से परिचित था जब छात्रावस्था में काशीविश्वविद्यालय में उनके व्याख्यान सुने थे। पर उनके सम्पर्क में बहुत समयानन्तर आया जब एक प्रयोग की पारम्परिकता के सम्बन्ध में उनसे प्रत्यक्ष रूप से अपनी जिज्ञासा के समाधान के लिए निवेदन किया।

हिन्दी के प्रख्यात कवि देव ने अपने ग्रन्थों में आमके पर्याय के रूप में 'नूत' शब्द का बहुत व्यवहार किया है। मेरी धारणा थी कि संस्कृत में आमके पर्याय में एक ऐसा शब्द है जो हिन्दी में अश्लील अर्थ में प्रख्यात है। उसे ही श्रील रूप देकर 'नूत' का व्यवहार किया जाने लगा।

देव ने स्वयं यह उद्घावना की होगी इसकी प्रतीति मुझे नहीं थी। मैं यह मान रहा था कि यह उनसे पहले अवश्य परम्परा में प्रयुक्त हुआ होगा। माननीय चतुर्वेदीजी ने बताया कि राजस्थान में संस्कृत पण्डित हिन्दी के प्रसंग में 'नूत' शब्द का ही प्रयोग करते हैं। फिर तो शोध करने पर महात्मा हितहरिवंश ने भी इसका प्रयोग किया है यह पता चल गया। मेरी धारणा को पुष्टि हो गयी।

जिस समय यह जिज्ञासा लेकर उनकी सेवा में गया था उस समय भी मैं यह नहीं जानता था कि श्री चतुर्वेदीजी ने ब्रजभाषा में रचना भी की है और प्रस्तुत पुस्तक पढ़ने के पूर्व भी मैं यही

समझता था कि उन्होंने ब्रजभाषा में रचना नहीं की है। जिज्ञासा तो उनकी अपूर्व शोमुषी के नाते ही की गयी थी। उत्तर पाने पर भी मैंने यह कल्पना नहीं की थी कदाचित् उन्होंने हिन्दी में काव्य-रचना की है। इसका कारण यही था कि भावयित्री प्रतिभासम्पन्न विद्वान् प्रायः सर्जना करने के झमेले में नहीं पड़ते। आचार्य तो बहुधा सर्जन से दूर ही रहते हैं। मध्यकाल में पण्डितराज जगन्नाथ ही ऐसे आचार्य हुए हैं जो कारयित्री प्रतिभा का भी समतुल्य प्रभाव दिखा गये हैं। अन्यथा जिन ध्वनिप्रस्थापक परमाचार्य मम्मट ने अपने दूषण उल्लास में कविकुल कलाधर कालिदास ऐसे समर्थकर्त्ता के दोष दिखाने में भी हिचक नहीं दिखलायी उनके विरोध में जब कुछ आलोचक उनकी काव्य-रचना को खोजने में लगे तो मंगलाचरण के अतिरिक्त उनके हाथ कुछ नहीं लगा। फिर तो उन्होंने उसकी धज्जियाँ उड़ा कर ही अपना आक्रोश शान्त कर लेने का प्रयास किया।

श्री चतुर्वेदीजी की ब्रजभाषा की रचना देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि यह ब्रजभाषा में काव्यसृष्टि करने में अभ्यस्त किसी कवि की रचना नहीं है। यही क्यों, कहीं-कहीं तो सिंहावलोकन का चमत्कार लाने का शक्त कर्तृत्व यही संकेत करता है कि कोई ऐसा समर्थ व्यक्ति इसका निर्माणकर्त्ता है जो उस सरणि में पूर्णतया रचा-पचा है।

छन्द भी रीतियुग के प्रचलित छन्द ही हैं। विषय देवी-देवताओं के अतिरिक्त ऐसा भी दिखता है जिसका ध्यान भारतीय मनीषा निजता की रक्षा की दृष्टि से पुराकाल से करती चली आ रही है। भारतीय ऋषि परम्परा-दर्शन प्रिय अवश्य थी, पर नयी सभ्यता में प्रदर्शनप्रियता इतनी बढ़ी है और नवयुवकों का झुकाव ऐसी मौलिकता की ओर हो रहा है कि अपनी संस्कृति ही खतरे में



पड़ जायेगी ऐसी सम्भावना है। यदि स्वकीयता की रक्षा की दृढ़ धारणा यहाँ की परम्परा में न रही होती तो भारतीय संस्कृति न जाने कितनी अन्य पुरानी संस्कृतियों की ही भाँति विलुप्त हो गयी होती।

संस्कृति और है ही क्या, अपना विचार और अपना आचरण। जिस प्रकार के विचारों की मान्यता हो उन्हीं के अनुरूप आचरण भी हो। भारतीय आचार-विचारों की नींव इतनी गहरी डाल दी गयी है कि किसी बाहरी आघात से उसके खोद फेंकने का प्रयास होने पर भी वह खुद नहीं पाती। केवल संस्कृति की ही चिन्ता की बात नहीं है। देश के स्वतन्त्र करने में साहित्य के द्वारा जो आन्तरिक परिवर्तन किया गया उसकी प्रमुख प्रेरणा स्वीकार करना इसलिए आवश्यक है कि सारे समाज की मानसिकता में में वांछित परिवर्तन जैसा साहित्य लाता है वैसा राजनीति नहीं ला पाती। इस रचना में भी कवि देश की स्वतन्त्रता की अभिलाषा करता हुआ दिखायी देता है।

अंग्रेजों ने देशी भाषाओं को वर्नक्यूलर (दास भाषा) कह कर विद्वानों में उनके प्रति जो विष का बोज बोने का उपक्रम किया उसका संस्कृत के इन पारावर्यधुरीण विद्वानों के कारण अंकुरण भी नहीं हो सका, सफलता तो दूर की बात थी। वस्तुतः संस्कृत के विद्वानों में देशी भाषाओं या बोलियों के प्रति उपेक्षा का भाव कभी नहीं रहा है।

काशी में संस्कृत की वर्तमान पीढ़ी के बड़े-बड़े पण्डितों के गुरुवर्य सर्वतन्त्र स्वतन्त्र बाल शास्त्री, जो सरस्वती के अवतार ही माने जाते थे, काशी में चूरन बेचने वाले चौबे से घण्टों चूरन के लटकों में तुकबन्दी करते रहते थे और अन्त में उसके चुप हो जाने पर उसे पुरस्कार देते थे तथा उसकी प्रशंसा करते

हुए गन्तव्य पर चल पड़ते थे। कवि चक्रवर्ती देवोप्रसादजी को तो मैंने स्वयं हिन्दी सम्मेलनों में कविता पढ़ते भी सुना है। ये विद्वज्जन सरस्वती की छोटी-बड़ी प्रतिमा में भेद नहीं करते थे।

माननीय चतुर्वेदीजी ने ये रचनाएँ किन परिस्थितियों में लिखी थीं इसकी छान-बीन में पढ़ने से मेरी दृष्टि में विशेष प्रयोजन की कोई सिद्धि नहीं दिखायी देती। रचनाओं के स्वरूप से स्वतः संकेत मिलता है कि कुछ रचनाएँ समस्यापूर्ति के लिए लिखी गयी हैं। इन रचनाओं में विविधता है। पर अपने नाम के अनुरूप श्री चतुर्वेदीजी ने राधाकृष्ण सम्बन्धी रचनाएँ अधिक की हैं। फिर भी वे न शिव को भूले हैं न राम को ही। यहाँ तक कि भक्तवर हनुमान् पर भी उनकी रचना है। राजस्थान में रहने के कारण आपने वर्षा के प्रसंग में उसकी हथेलियों में मेंहदी की रचना का इन्द्रवधूटी के व्याज से उल्लेख किया है। राजस्थान में विवाह के अवसर पर कन्या के हाथों में मेंहदी की जैसी रचना की जाती है, उसमें जैसा कलात्मक सौन्दर्य सूक्ष्म रूप से लाया जाता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। अन्यत्र राजस्थान से आये—बसे लोगों के मध्य यह प्रथा अवश्य दिखायी देती है। देखा-देखी राजस्थान की कलाकर्त्री के द्वारा दूसरे लोग भी उसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसका विनियोग करने लगे हैं। दूसरे ढंग से मध्यकाल के राजस्थान से संबद्ध जयजयगढ़ आमेर का उद्घोष करने वाले प्रसिद्ध कवि पद्माकर ने मेंहदी और वीरवधूटियों का उपमेय उपमानभाव उत्प्रेक्षा के द्वारा इस प्रकार स्थापित किया है। मेंहदी रची हथेली पर मुख रख कर सोई हुई नायिका के लिए वे लिखते हैं—

“सोयो है इन्दु मनो अरबिन्द पै इन्द्रवधून के वृन्द बिछाय कै।”



संस्कृत के विद्वान् जब हिन्दी में लिखते हैं तब कभी-कभी उनकी रचना में संस्कृत की वह वर्तनी जो हिन्दी में विकसित या विकृत हो चुकी है, उधर उनका ध्यान नहीं रहता। आचार्य केशवदास तक में यह स्थिति दिखायी देती है जो भाषा में रचना करने के लिए कटिबद्ध होकर लिखने बैठे थे। यही नहीं संस्कृत के कुछ शब्द हिन्दी में लिंगव्यत्यय से चलते हैं। केशवदास ने देवता शब्द को स्त्रीलिंग ही में प्रयुक्त किया है जब कि उनसे पहले तुलसीदासजी ने उसका पुल्लिंग प्रयोग कर दिया था।

“द्विज देवता घर हि के बाढ़े।”

पर केशवदास—

“अशोकलग्ना वनदेवता सो”—

ही लिखते हैं। हिन्दी में ब्रह्मा के लिए प्रयुक्त विरिंचि शब्द विरंचि हो गया पर केशवदास ने भी ‘विरिंचि’ के प्रति आग्रह दिखाया है और श्री चतुर्वेदीजी ने भी। देह शब्द संस्कृत में पुल्लिंग है। पर तुलसीदासजी लिखते हैं—

“चिदानन्दमय देह तुम्हारी।”

श्री चतुर्वेदीजी ने देह शब्द को पुल्लिंग ही में प्रयुक्त किया है। इस प्रकार चतुर्वेदीजी की हिन्दी की रचना के सम्बन्ध में कुछ जो कथितव्य समझ में आया है, मैंने लिखने का यत्न किया। सबसे बड़ा महत्त्व इसका ऐतिहासिक है। श्री चतुर्वेदीजी ऐसे संस्कृत के पारंगत विद्वान् ने हिन्दी में रचना की है इसकी जानकारी हिन्दी के इतिहास को नहीं थी। उनकी जन्म-शताब्दी के अवसर पर उनके सुयोग्य सपूत पं० शिवदत्तजी चतुर्वेदी ने इसका प्रकाशन करके शंसनीय कार्य किया है। इस पुस्तक में उनकी कुछ संस्कृत की रचनाएँ भी संकलित कर दी गयी हैं। जहाँ तक विचारधारा की

बात है हिन्दी-संस्कृत उभयत्र एक सी ही स्थिति है। एकाध ऐसी रचना भी है जो भाषान्तर से एक ही है।

एक ओर हिन्दी में काव्य प्रवाह नयी कविता, अकविता तक पहुँच चुका है, खड़ी बोली के माध्यम से, पर यह समझना ठीक न होगा कि ब्रजी, अवधी में रचना का प्रवाह बन्द हो चुका है। अब भी यह पुरानी धारा किसी न किसी रूप में प्रवाहित हो रही है भले ही उसका प्रकाशन न होता हो। यह धारा सभी प्रकार के जनों के द्वारा हो रही है, बुधजन भी उसमें हैं और साधारण जन भी।

हिन्दी साहित्य में पुरानी काव्यवन्द्या की धारा चाहे कितनी भी क्षीण क्यों न हो जाये, पर वह किसी न किसी रूप में प्रवाहमान रहेगी। क्योंकि उसे संस्कृत और हिन्दी सभी क्षेत्र के गण्यमान्य विद्वानों ने प्रवाहित रखने का नैसर्गिक यत्न किया है।

इस अवसर पर पं० शिवदत्त चतुर्वेदी साधुवाद के पात्र हैं जिन्होंने अथक श्रम करके इन रचनाओं को प्रकाशित कराया। उनकी जन्म-शताब्दी के सुअवसर पर उनके प्रति मेरी भी शतशत प्रणतियाँ।

श्री विवाहपञ्चमी

आग्रहायण शुक्ल, सं० २०३७ वैक्रम

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

साम्मानिक आचार्य

हिन्दी विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय



## एक और छवि

परम श्रद्धेय महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी अगाध ज्ञान के सागर थे और वेद, पुराण आदि उनके कण्ठ पर रहते थे। संस्कृत भाषा और साहित्य के ये अप्रतिम मनीषी विद्वान् थे। तभी विद्वानों ने इन्हें आधुनिक वेदव्यास की संज्ञा दी थी। प्रमुख विश्वविद्यालयों, शिक्षण-संस्थाओं और साहित्यिक संगठनों से ये विशिष्ट रूप से सम्बद्ध रहे। अखिल भारतीय संस्कृत-साहित्य सम्मेलन जैसी अनेक संस्थाओं के तो ये संस्थापक ही थे। संस्कृत-रत्नाकर, वैष्णव धर्मपताका तथा ब्रह्मचारी आदि अनेक पत्रिकाओं का सम्पादन-प्रकाशन इन्होंने वर्षों तक किया था। महामहोपाध्याय, महामहोपदेशक, साहित्यवाचस्पति, विद्यावाचस्पति, व्याख्यान वाचस्पति आदि कितनी ही उपाधियों से ये विभूषित हुए थे। संस्कृत के उद्भूट विद्वान् के रूप में देश में इन्होंने ख्याति और सम्मान प्राप्त किया। स्वतन्त्रता के उपरान्त राष्ट्रपति ने भी इन्हें संस्कृत विद्वान् के रूप में सम्मानित किया था।

हिन्दी के गद्य और पद्य लेखन में भी इनकी उत्तनी गहरी पैठ थी जितनी संस्कृत में। हिन्दी में इनके अनेक लेख और भाषण व्यापक चर्चा का विषय बने थे। हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति भी इनकी सेवायें बहुत महत्वपूर्ण थीं। स्वाधीनता के बाद जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने के प्रयत्न चल रहे थे तो दिल्ली में सेठ गोविन्ददास और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन आदि के प्रयत्न से एक 'राष्ट्रीय राष्ट्रभाषा परिषद्' बुलाई गयी थी। इस परिषद् में इन्होंने अपने संस्कृत व्याख्यान में संस्कृत जगत् की ओर से हिन्दी को समर्थन दिया था।

आदरणीय शर्माजी का जन्म जयपुर में संवत् १९३८ की पौष शुक्ल दशमो ( २९ दिसम्बर, १८८१ ई० ) को हुआ और स्वर्गवास ( १० जून, १९६६ ई० ) को वाराणसी में हुआ । इनके आरम्भिक जीवनकाल में काव्य-रचना का माध्यम ब्रजभाषा थी । इन्हें ब्रजभाषा की कविताओं से अपार स्नेह था और सैकड़ों छन्द कण्ठस्थ थे । काव्य-गोष्ठियों में इनकी रुचि थी और जयपुर दरबार में आयोजित विशेष काव्य समारोहों में ये भाग भी लेते थे । जब भी कवि-विद्वान् एकत्र होते थे तो ये उन्हें कवितायें सुनाने को प्रोत्साहित करते थे । इनके निवास पर अनेक आयोजनों में कवितापाठ ये कार्यक्रम बहुधा हुआ करते थे ।

इस संकलन का नाम 'छवि की किरणें' इसी के एक छन्द से प्रेरित है । कदाचित् उस विराट् शक्ति की अनेक छवियों की किरणों ने पूज्यपाद के कवि मानस को समय-समय पर प्रेरित किया होगा और इस प्रेरणा के फलस्वरूप ही उन अनेक छन्दों का जन्म हुआ होगा जो इन्होंने इन छवियों को अंकित करते हुए लिखे । कभी ये छवि प्रभु के अनेक स्वरूपों की हैं—गणेश की अथवा गिरिधर की, वेणुधर की अथवा राधा महारानी की, राम की अथवा जानकी की, हनुमान् की अथवा शम्भु की । कभी ये छवियाँ प्रभु के निर्गुण निराकार स्वरूप की हैं तो कभी ये छवियाँ प्रकृति के उस सौन्दर्य की हैं जो विभिन्न ऋतुओं में अपने विविध रूपों में निखरती हैं कभी पावस में, कभी शरद् में, कभी हेमन्त तो कभी वसन्त में । ये छवियाँ कभी मानव मन की किसी सूक्ष्म मनस्थिति की हैं तो कभी स्थूल परिवेश के किसा-सुन्दर अंचल की हैं । इन छवियों में बड़ी विविधता है, बड़ा विस्तार है और इनकी किरणों की पहुँच बड़ी गहरी है ।

एक दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो यह संग्रह भी एक उद्भट



विद्वान्, विचारक, दार्शनिक, महोपदेशक, समाजसेवी, विपुल कीर्तिशाली साधक, अध्येता एवं संस्कृतनिष्ठ महापुरुष की एक सर्वथा भिन्न और अनूठी छवि प्रस्तुत करता है। पूज्यपाद की जितनी गहरी पैठ दर्शन, न्याय, व्याकरण आदि में थी उतनी ही साहित्य में भी थी। वे बड़े ही सहृदय थे और मानव स्वभाव के बड़े सूक्ष्म पारखी थे। अपने जीवन-दर्शन के प्रति वे कितने समर्पित थे और कितनी सहज ईमानदारी से जीवनयापन करते थे यह इनके जीवन की एक घटना से स्पष्ट है। गोवर्धनपीठ के शंकराचार्य जगद्गुरु भारतीय कृष्णतीर्थजी ने अपनी वसीयत में इनका नाम शंकराचार्य के पद के लिए प्रस्तावित किया था। इस पद पर आसीन होने के लिए संन्यास लेना आवश्यक होता है। जब इनसे आग्रह किया गया तो इनका सहज उत्तर था, “संन्यास तभी लिया जा सकता है जब मन में संसार से पूर्ण विरक्ति की स्थिति हो, परन्तु यहाँ तो संन्यास का उद्देश्य उल्टे शंकराचार्य पद पर प्रतिष्ठित होना है, जो सांसारिक अनुरक्ति ही होगी। अतः शंकराचार्य बनने के लिए संन्यास स्वीकार करने में मैं अपने को असमर्थ पाता हूँ।” जीवन के प्रति यही सहज ईमानदारी इनके प्रस्तुत काव्य-संकलन में व्याप्त है।

प्रस्तुत संकलन में हिन्दी के छन्द और संस्कृत के छन्द संगृहीत हैं। हिन्दी के अधिकांश छन्दों का रचना-काल संवत् १९९३ से १९९८ ( सन् १९३६ से १९४१ ई० ) है। कुछ ही छन्द संवत् २००५ विक्रमी ( १९४८ ई० ) के हैं। दोहे, कवित्त, घनाक्षरी, सवैया, कुण्डलिया आदि छन्दों में अनेक विषयों का समावेश हुआ है। अधिक छन्द ब्रजभाषा में रचे गये हैं, कुछ खड़ी बोली में भी हैं। क्रम बनाने में प्रयत्न यह किया गया है कि एक विषय के छन्द एक साथ रहें।

इन छन्दों में भाषा का बड़ा सुन्दर प्रवाह है और भावों की अभिव्यक्ति बड़े सहज ढंग से हुई है। बहुधा बड़े अछूते भाव बहुत ही कम शब्दों में और बड़ी सरलता से अभिव्यक्त हुए हैं, यथा—

“श्री राधा की चाहियत कृपादृष्टि की कोर ।  
जा आगे ठाढ़े रहत भुवननाथ कर जोर ॥”

कोमल भावनाओं का बड़ा सूक्ष्म और सरस वर्णन करने में इन्हें कोई कठिनाई नहीं होती। विवाह के अवसर पर सखियाँ राम-जानकी को जुआ खिलाती हैं। हल्दी से पीले जल में स्वर्ण की मुद्रिका जैसे ही राम सावधान होकर उठाते हैं—

“.....राम सावधान ज्योंही लगे हैं उठाने  
वधू अंगुरी छुवत उठी लहर रनक की ।  
कँपिकर छूटि परी मुँदरी वधू के हाथ  
बाल भाव लीनी गहि लाज न तनक की ॥.....”

इसी प्रकार अलंकारों की छटा के साथ बड़े ही सुन्दर और हृदयग्राही चित्र विभिन्न ऋतुओं की छवि का वर्णन करते हुए अनेक छन्दों में अंकित हुए हैं।

“मरकत मनिमय मंडित महीधर में,  
मारुत महित मग मेघ मँडराये हैं ।”

इस पूरे छन्द में “म” के अनुप्रास के साथ मेघ का वर्णन है तो दूसरे सम्पूर्ण छन्द में “स” के अनुप्रास की छटा के साथ सुहावनी शरद् का सुन्दर वर्णन है—

“सुन्दर सलिल सर सरिता सर सौवन,  
सुच्छ सत सैकतनि सुखमा सजावनी ।  
सुघर सुहाग सित सुमन समूह सार  
सुरभि समीरन सनेह सरसावनी ॥



स्यन्दनाङ्ग सित पत्र सरस समाज सिरे,

सहज समद सुर सबद सुनावनी ।

संभु सिर सुरसरि सुभग सरोज सम,

सीतकर सोभा सनी सरद सुहावनी ॥”

इन कविताओं में कुछ ऐसी सुन्दर पक्तियाँ हैं जो सहज मानवीय भावनाओं को तो अंकित करती ही हैं, किसी सूक्ति के समान अविस्मरणीय भी हैं—

“नोकदार भाला लगे भल हालाहल पान ।

बर बड़वानल पैठिबो न तु जीवन बिनु मान ॥”

अथवा

“चन्दन कीने बिनु कुसुम इक्षु दण्ड फल हीन ।

शरम न आई तोहि विधि सुजनन को करि दीन ॥”

सनेह भरी बतियाँ, रात जात नहीं जानी है, ब्याह उहमा सौं आदि छन्दों में शृङ्गार रस की बड़ी हृदयग्राही छवियाँ हैं। राखी, दीवालो, रामबाग आदि छन्दों में वर्णनात्मक काव्य-शक्ति के उदाहरण तो हैं ही, कुछ सुन्दर भौतिक चित्रों की छवि भी है।

इस संकलन में जहाँ एक ओर प्राकृतिक चित्रों, माननीय भावों की छवियाँ हैं वहीं जीवन को आलोकित करने वाले दार्शनिक विचार भी हैं—

“मधुर वचन मुख विमल मन भरसक पर उपकार ।

हरि सुमिरन अनुछन इहै मनुज जनम भल सार ॥”

अथवा

“रहत सतत परहित निरत नहि चित कबहु विकार ।

धन तन देत उछाह सों कहियत ताहि उदार ॥”

कहीं “ब्रह्मयोग के बजाय श्यामयोग” को प्राथमिकता देने वाले भाव हैं तो कहीं विराट् पुरुष के एकाकी होने के भाव बड़े ही सहज ढंग से वर्णित हैं—

“भीतर बाहर व्याप रहा सबमें अलबेला ।  
कहते वेद पुरान तऊ वह रहत अकेला ॥”

जीवन्त काव्य रचनायें काल की सीमा से परे होती हैं । प्रस्तुत संकलन की सभी रचनायें १९४८ के पूर्व की हैं और रचयिता के स्वर्गवास के काफी समय बाद एक संग्रह के रूप में प्रकाशित हो रही हैं । फिर भी, इनमें जो माधुर्य और प्रसाद है वह सुधी पाठकों को सदैव प्रेरित और आनन्दित करेगा, इसी विश्वास के साथ यह पाठकों को समर्पित है ।

पूज्यपाद मेरे नाना थे । मेरा परम सौभाग्य है कि उनके आशीर्वाद से इस काव्य संकलन के प्रकाशन से सम्बद्ध हुआ । इस संकलन का प्रकाशन और इसका नामकरण मामाजी डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी को प्राप्त प्रेरणा का परिणाम है । ये पूज्यपाद के विभिन्न ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए सतत सक्रिय रहे हैं । हम श्री लक्ष्मीपति मिश्र ट्रस्ट के प्रति आभारी हैं जिनके बहुमूल्य सहयोग से यह प्रकाशन सम्भव हो सका ।

पूज्यपाद की जन्म-शताब्दी के पावन अवसर पर यह प्रकाशन हम सभी लोगों की उनके प्रति एक अकिंचन श्रद्धाञ्जलि है ।

वाराणसी  
कार्तिक पूर्णिमा, सं० २०३७ वि०  
( १९८० )

} महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी



( १ )

## छवि की किरणों में

डराते खड़े नितही छह शत्रु दहाड़ते केसरी से हिरणों में  
जलाते सदा मद मत्सर डाह दवानल सी धधकी अरणों में ।  
सँभालता कोई नहीं जग मित्र लगी इक आस प्रभू चरणों में  
यही विनती अबतो सुनो नाथ, छिपालो मुझे छविकी किरणों में

( २ )

## विघ्नहर गणेश

विघ्नकुल कालसर्प भच्छन को पच्छिराज  
विघ्न निबिड़तम दारन दिनेश हैं ।  
विघ्नकालकूट भट समन सुधा मयूख  
विघ्न गजेन्द्र मद पाटन मृगेश हैं ।  
विघ्न भयंकर अरण्य मध्य दावानल  
विघ्न दल पव्व पच्छ काटन सुरेश हैं ।  
विघ्न दल तपति सिरान हेतु भक्तन की  
सुखद पियूष मेघ गाजत गणेश हैं ।

( ३ )

## कल्पतरु

अंकुस के व्याज धर्म पाश पुनि अर्थरूप  
 मोदक हूँ काम जिहि नमत नरेश हैं ।  
 जल में जलज जिमि रहत लहत मुक्ति  
 चारों कर चार पुरुषार्थ उपदेश हैं ।  
 सेत तनु सत्त्व तहँ लसत सिंदूर रज  
 भूखन उरग तम गुन लवलेस हैं ।  
 रिद्धि सिद्धि सेवै पद सुण्डादण्ड सीचै सुधा  
 सेवकन कल्पतरु राजत गणेश हैं ॥

( ४ )

## मंगल दायक

ईस मुनीस दिगीस फनीस रिझायक जागुण गायक हैं  
 अंकुस कंज धरै कर विघ्न नसायक सिद्धि विधायक हैं ।  
 लाभरु लच्छ लसै जिहि के पद पादक पूजिबे लायक हैं  
 पूरहि आस कविन्दनि सो गन नायक मंगल दायक हैं ॥



( ५ )

## गजानन

विधु सेखर मोद बढ़ावन हैं गिरिजा मनमोर नचावन हैं  
 विधना बलि बंस नसावन हैं गुह नेहलता सरसावन हैं ।  
 सुर मानव भक्ति सुभाजन हैं रिधि बुद्धि वधू चख आंजन हैं  
 सुख संपत्ति आनंद कानन हैं दुख दारन देव गजानन हैं ॥

( ६ )

## गिरिधर-छवि

पीत पट धारें खोर केसर लगायें श्याम  
 मन्द मुसकान लोक लाज हरैं प्यारी की ।  
 ऊपर उठाय बाहु छोर छिंगुरी पै राख्यो  
 सैल सुबिसाल जहाँ सोभा फुलवारी की ॥  
 जातरूप जटित तमाल तर फूलतो जो  
 ता पै सोह जाती छटा बेलि सुकुमारी की ।  
 ऊरध बलाका लहि राजत जलद जहाँ  
 लेस तब पाती तुला छवि गिरिधारी की ॥

( ७ )

## अधिकाई

पूतनिका छल सो विख प्याय के दुर्लभ धाय गती भल पाई  
 कंस चतुर्भुज रूप लह्यो सु कहो तिन कौन करीही भलाई ।  
 गारि हू दै सिसुपाल सभा बिच जीवन जोति प्रभू में मिलाई  
 बैर किये हू पै नातो निबाहत रावरी नाथ इहै अधिकाई ॥

( ८ )

## वेणु बजावत

सीत सजावत मोर पखा अरू भाल सुहावत शोर मचावत  
 कान जड़ावत कुंड़ल सुन्दर माल धरावत कण्ठ विभावत ।  
 दैत्य परावत दूर सखीजन वाञ्छित पावत देखि लुभावत  
 बाल निभावत संग सखा बनि वेणु बजावत धेनु चरावत ॥

( ९ )

## धेनु चरावत

गावत जागुन गाथ दिवानिशि शेष लजावत पार न पावत  
 नावत शीश सुरेश महेश रु नारद भावत ध्यान लगावत ।  
 धावत जासु निदेश समीर हू भानु तपावत इन्दु सिरावत  
 खावत गोपन संग में छाक के वेणु बजावत धेनु चरावत ॥



( १० )

## दही

देव अगोचर छांड़ि गोलोकांहि गाय चरावत आयो मही  
 खेलत गोपन संग लह्यौ सुख सो महिमा नहि जात कही ।  
 मांगत बार हि बार बिनै करि दान दिये बिन रोकों सही  
 वा सुरलोक सुधातजिमो हिय ग्वालिनको प्रिय लाग्यौ दही॥

( ११ )

## सुधि श्याम की

चाह भरी आती उतैं लाली वृषभानुजा की  
 देखि ताहि इन्हें सुधि रहंती न काम की ।  
 अदभुत खेल दोऊ रचते निकुंजन में  
 संग गोप गोपी भूली जाते धुनि धाम की ॥  
 दोउन की प्रीति देखि हम हू बिचारी कछु  
 ब्रज में गुहार परी राधेश्याम नामकी ।  
 वे तो निरमोही भये जसुधा सखी न भाखै  
 राधे जिन कहो सुधि आवत है श्याम की ॥

( १२ )

## अंगारन पै माखन

माखन को चोर मोहि कहत गुवालिन ये  
 माखन पिघल घर आंगन पर्यो रहै ।  
 सावन के आंधरन दीखत हरो ही हरो  
 मेरे गैर लागों तातैं रंग विगर्यो रहै ॥  
 वासुदेव वासना चहूँधां धधकानी ब्रज  
 भाव बात वेग दिन रात पसर्यो रहै ।  
 तनिक विचार मन न्याय सों कहो जू कैसे  
 जलते अंगारन पै माखन धर्यो रहै ॥

( १३ )

## चरन राधा महारानी के

कुंज में विनोद समै अंक धरि लीने स्याम  
 मद के हरैया नभ मध्य इंदुमानी के ।  
 विस्व संपदा के हैं निधान मुनि ध्यान धरैं  
 कैसे कै बखानै कवि जो न बिसै बानी के ॥  
 मरकत मनिमय महल सिखर मनौ  
 कनक कलस जग मुक्ति राजधानी के ।  
 अनुपम कान्ति सर सुभग सरोज नित  
 चरन बिराजै चित्त राधा महारानी के ॥



( १४ )

## राधा कृपा

श्री राधा की चाहियत कृपादृष्टि की कोर ।  
जा आगे ठाढ़े रहत भुवन नाथ करजोर ॥

( १५ )

## राम अवतार

रावन तपस्या कर पाय वर शंकर सों  
तीनों लोक संपदा को कीनो वश सार है ।  
देवन बनाय बन्दी बाटे घर काज तिन्हें  
यज्ञ भाग भोग को न राख्यो अधिकार है ॥  
ऋषि मुनि मार अस्थि पंजर पहार रचे  
रोपि के अनीति रोक्यो धर्म परचार है ।  
भूरि भार भूरि पेखि साधु निराधार देखि  
जग भरतार लीनो राम अवतार है ॥

( १६ )

## जानकी

कौतुक विवाह सखी दोउन खिलात जुआ  
पीत जलबीच डारी मुद्रिका कनक की ।  
राम सावधान ज्यों ही लागे हैं उठान  
वधू अंगुरी छुवत उठी लहर रनक की ॥

कँपि कर छूट गिरी सुंदरी वधू के हाथ

बाल भाव लीनी गहि लाज न तनक की ।

तारी दै कै गारी तब गाय उठी बाल सब

हारे रघुनाथ जीती जानकी जनक की ॥

( १७ )

## हनुमान

वीर सिरमोर कपि देवी अंजना को पूत

दूत रघुनाथ जूको असुरनि काल है ।

विकट बनायो वेष रोम-रोम पव्व फूटै

दिनमनि देखियत मुकुट सुभाल है ॥

लंक गढ़ ओर दीठि बात गति भीतकरै

प्रसन चहत मनु गगन कराल है ।

चकित परसपर देवगन गावैं गाथा

देखो हनुमान लांघैं सागर विशाल है ॥



( १८ )

## शंभु

साजत सिंगार सिवा मोतिनसों बेनी गुहै  
 चूरामनी नूतन सँदेस पठवाये हैं ।  
 संकर विहँसि नागराज को निदेस दियो  
 सीस मनि देहु करो गौरी मनभाये हैं ॥  
 हरखि सिधाये सटकारे घुघरारे कारे  
 केसन कलाप तनु गति हि छिपाये हैं ।  
 मांग बीच मनि धारि गिरिजा ललाट वक्र  
 इन्दु से फनिन्द भेटि संभु सिर आये हैं ॥

( १९ )

## गंगा

वामन नखाग्र टूट्यो ब्रह्म अण्ड छोर तातें  
 प्रविस पखारि पद पंकज सुहाई है ।  
 ब्रह्मा के कमण्डलु में शंभु जटाजूट हू में  
 बसि बहु काल फेरि मेरु सिर धाई है ॥  
 प्रगटि हिमाचल पै भगीरथ रथ संग  
 धावती धरा पै मुनिवृन्द मन भाई है ।  
 पाप पव्व फोरन को भव बन्ध तोरन को  
 सागर हिलोरन को गंग चलि आई है ॥

( २० )

## सुरसरि धार

जाको लेस हेरियत गगन हिंडोरा चढ़ी  
 देखि वसुधा के उर हीरकनि हार में ।  
 मानस बिहारी राजहंस यूथ यूथन के  
 सित छद भार में तुखार घनसार में ॥  
 मुनि मन मोह करी सुखद निहारी उहैं  
 तरल तरंगन की सुखमा अपार में ।  
 कालिमा कलुष निज सहज हिराय मनो  
 पातक पहार बहैं सुरसरि धार में ॥

( २१ )

## अभिलाषा

तेरे ही प्रभाव दिव्य दुन्दुभि निनादन सों  
 लेत अगवानी माता देवनि कतार में ।  
 रम्भादिक सेवित विमान बैठि विचरत  
 जानि जगदोस दूर तजत विकार में ॥  
 उछरत बीच संग भ्रमत भँवर बीच  
 गत तट ओर कहूँ लोटत कछार में ।  
 छिन्न भिन्न जन्तुन सों कबहुँक देखि पै हों  
 देह निज जात बह्यो सुरसरि धार में ॥



( २२ )

## तारे हैं

सकल जनम मांहि पुन्य को न लेस रुच्यो  
 सेस नहिं छांडै जिन पाप पुंज भारे हैं ।  
 वे हू गोध व्याध और गनिका अजामिल से  
 मिस नाम लेत निज धाम को सिधारे हैं ॥  
 ध्रुव प्रह्लाद गजराज कपिराज पुनि  
 रात्रिचरराज हू से कितक उबारे हैं ।  
 गिनती करत थकैं सेस औ गनेस जैसे  
 नभ में न तारे जिते नाथ तुम तारे हैं ॥

( २३ )

## प्रभु-रूप

आदि है न अन्त मुनि ध्यान हू में आवै नाहिं  
 अलख अरूप तत्त्व वेद समुझायो है ।  
 ता में करि लीन मन इन्द्रिय भये जे जती  
 तिनको सुयश भले त्रिभुवन छायो है ॥  
 लकुट त्रिभङ्गी मोर मुकुट मरोरदार  
 कंज सम नैननि प्रसाद सरसायो है ।  
 घन सम श्याम पीत पट अभिराम राजे  
 तेरो प्रभु रूप यहै मेरे मनु भायो है ॥

( २४ )

## अवतरण

गनेस दिगीस दिनेस धनेस खरे नित आयसु पावत हैं  
 बिरिचि रु सारद नारद सेस सदा जिनके गुन गावत हैं ।  
 बखानि सकैं नहिं चारि हू वेद थके कहि नेति बतावत हैं  
 बचावन साधुन की मरजाद उही प्रभु भूमि पै आवत हैं ॥

( २५ )

## करुणा

गावैं हैं पुरान वेद रावरो विरुद सबै  
 तारन उधारन की बान है नितै नई ।  
 ता दिन गयन्द की गुहार पै गरुड़ छाँड़ि  
 धाये हे पयादे यह कीरति छितै छई ॥  
 आज तो विपति नक्र लोक गज चक्र गिलै  
 देखि विधि वक्र आस जीवन बितै दई  
 आरत पुकारत न धारत हिये में तऊ  
 करुनानिधान तेरी करुना कितैं गई ॥



( २६ )

## आरती

नैन मन जीह कान नासिका तुचा पियाल  
 नेह पूर पूरि सजै कलुष निवारती ।  
 लगन लगाय तिन बीच बाती अर्ध मुख  
 ज्ञान आगि जारै मोह जालनि संघारती ॥  
 बुद्धि डांडी पकरि घुमावें चहुँ ओर भलै  
 पाद पद्म अंबाके उचारै सुभ भारती ।  
 आरती पतंगै छार होत उन धन्यन की  
 जे जन करत नित ऐसी सिरै आरती ॥

( २७ )

## लालसा

बांध मरजाद मनु वर्ण अरु आश्रम की  
 फूट ईरषा की जड़ भलै काटि डारी है ।  
 परम पुनीत उपदेसि एक पातिव्रत  
 सावित्री औ सीता सी बनाई यहै नारी है ॥  
 सत्य के पालन में सिखयो सरबस्व दान  
 पर उपकार सबलोक सुभकारी है ।  
 सोई गहि मारग अरु लहि पुनि ईस कृपा  
 देस हो सुखारी यही लालसा हमारी है ॥

( २८ )

## केहरि रूप लिये

काजर के उपजावत दीपक मंडन साज वधून पलङ्क को  
 कामन मोहन मानुष देव अदेवनि बन्धन काज जगत को ।  
 को कलबैन सुनावत सुन्दर आगम डिण्डिम राल वसन्त को  
 केहरि रूप लिये मारन हित राक्षसराज हिरण्यकसप को ॥

( २९ )

## करुना तिहारी है

बिनु भय दिसि दिसि उड़ते सुछन्द तिन्हें  
 रोकि हेम पीजरा बड़ाई दर्ई भारी है ।  
 इत उन कोन गृह मन बहलाते ता पै  
 संमुख ही राखिबे की हाजरी बिचारी है ॥  
 लालच अहार को दै डर हू दिखाय दण्ड  
 असमय कूजिबेकी बान भली डारी है ।  
 एते हू पै बार बार दरस बिडालन को  
 देव ! धन्य पंछिन पै करुना तिहारी है ॥



( ३० )

## दीखत नई नई

कहत कबीश माया प्रकृति बखानी कोऊ  
 शक्ति चिदानन्द रूप प्रकृति भई भई ।  
 पार नाहिं पावैं वेद देव ऋषि ध्यान धरैं  
 महिमा अनत सब भुवन छई छई ॥  
 देखि देखि एक एक रचना चकित जाकी  
 को न विज्ञ मानी जीह दातनि दई दई ।  
 आदि है न अन्त यह चलत प्रवाह नित  
 तो हू सब वस्तु सदा दीखत नई नई ॥

( ३१ )

## श्याम योग

अलख अरूप नाम रूपरहित बखान्यो जाहि  
 ताहि भक्त वांछा बस नाम रूप जोग हो ।  
 रूप को अभाव ही सलोनों स्याम दीख परै  
 ब्रह्म अरु स्याम में न रंच भेद भोग हो ॥  
 द्वैतवादी मूढ़ नाहिं वेदशास्त्र मर्म जानैं  
 ज्ञान को विरोध अरु भक्ति भल ढोंग हो ।  
 ढोल सो बजाय मुख ते ही बिन युक्ति कहैं  
 “और ब्रह्म योग के बजाय श्याम योग हो” ॥

( ३२ )

## अकेला

रहत अकेला वह सदा नहीं किसी की चाह  
नारदादि थकि थकि गये कोउ न पाया थाह ।

कोउ न पाया थाह उसीने जग उपजाया  
जीव नचावनहार अलौकिक उसकी माया ।  
भीतर बाहर व्याप रहा सब में अलबेला  
कहते वेद पुरान तऊ वह रहत अकेला ॥

( ३३ )

## सब ठौर

करि विचार देख्यो भलै को भासत चहुँ ओर  
ओर छोर भीतर तुही छाय रह्यो सब ठौर ॥ १ ॥  
पूरब पदिचम दछिन पुनि वाम सांझि अरु भोर  
भीतर बाहर लखि परै एक उही सब ठौर ॥ २ ॥  
जिमि गयन्द की सुनत धुनि तुरत बचायो दौर  
इमि मेरी हू विनय सुनि रखु गुविन्द सब ठौर ॥ ३ ॥



( ३४ )

## बिना पात की डार

फूल फलनि लखि रसिक जन जीवन करत निसार ।  
 कोसें वै अब हिमहनी बिना पात की डार ॥  
 याही में पुनि आइ हैं फलफूलन के भार ।  
 जनि निदरहु दिन चार इहि बिना पात की डार ॥  
 चहियत छांह निदाघ में सिसिर धूप सों प्यार ।  
 अस बिचारि विधिना करी बिना पात की डार ॥

( ३५ )

## सार

मधुर बचन मुख विमल मन भरसक पर उपकार ।  
 हरि सुमिरन अनुछन इहै मनुज जनम भल सार ॥

( ३६ )

## तिनपायो

अरि जिन पीठन लखीं नहिं जाचक नाहिं नकार ।  
 परतिय परस न सकीं तन तिन पायो जग सार ॥

( ३७ )

## उदार

रहत सतत परहित निरत नहि चित कबहुं बिकार ।  
धन तन देत उछाह सों कहियत ताहि उदार ॥

( ३८ )

## शिवसम कोउ उदार

पात धतूरा पाय के संपति देत अपार ।  
गिरिजा को दिय अर्घतन शिव सम कोउ उदार ? ।

( ३९ )

## भ्रमर लेहु पहिचान

करत चितेरे चतुरई कागद कलम समान ।  
तुम जनि भूलो भेद कौ भ्रमर लेहु पहिचान ॥  
देखि कतहु करवीर हू रूप गुलाब समान ।  
मति लपटहु मकरन्द सों भ्रमर लेहु पहिचान ॥  
मुख मम पदम न होय यह दुह चख मोर न भान ।  
काहि सतावो भ्रम भरे भ्रमर लेहु पहिचान ॥  
गई सिसिर की आपदा आगम रितुपति जान ।  
प्रकटो कली गुलाब की भ्रमर लेहु पहिचान ॥



( ४० )

## अर्थ

परवंचन परतियगमन पर धन हरन समर्थ ।  
 बँधि माया कछु नहिं करत जतन मुक्ति के अर्थ ॥  
 धर्म मुक्ति दीनी बिदा कामहुं नाहिं समर्थ ।  
 व्यापि रह्यो इहिं काल में सकल जगत इक अर्थ ॥

( ४१ )

## मुखबन्द

जहाँ यह भेक रटे टर टर उहाँ हुलसात पुरन्दर अर ।  
 वहाँ कहु कौन रचै निज छन्द विचार कियो पिक ने मुखबन्द ॥

( ४२ )

## मान

नौकदार भाला लगे भल हालाहल पान ।  
 वरु वडवानल पैठिबो नहिं जीवन बिनु मान ॥

( ४३ )

## शरम न आई

चन्दन कीने बिनु कुसुम इक्षु दण्ड फल हीन ।  
 शरम न आई तोहि विधि सुजनन को करि दीन ॥

( ४४ )

## दीजिये

दीजिए अभय सब जगत चराचर को ।  
 छांडि कै असार वस्तु सार गहि लीजिए ॥  
 लीजिए सतत भल पर उपकार सुख ।  
 मानस चसक राधा माधो छवि पीजिए ॥  
 पीजिये उठत रोस नद रय धीरज सों ।  
 सोचि परिनाम सुभ कारज हू कीजिये ॥  
 कीजिये सुरच्छा निज कुल मरजादन की ।  
 रन बिच शत्रुन को पीठ नहिं दीजिए ॥

( ४५ )

## हिम्मत न हारिये

संपद विपद सुख दुख हरिहाथ सबै ।  
 अहरह चक्रसम चलत बिचारिये ॥  
 अनुदिन तीन दसा दिपत दिनेस हू की ।  
 कछु थिर नाहिं इहै तत्त्व निरधारिये ॥  
 दीनन के नाथ ही को राखिये भरोसो सदा ।  
 चिन्ता चित्ता बीच तनु तूल जनि जारिये ॥



बखत परे पै अरि आन अपनी पै सुनी ।

सरबस बारिये पै हिम्मत न हारिये ॥

( ४६ )

## हिम्मत न हरिये

संपत विपत चक्र घूमत रहत सदा ।

कोऊ भाव नाहि थिर साधु निरधारिये ॥

आपने ही कर्मको विकास सब जानि मन ।

काहू पर ऊपर न दूखन पसारिये ॥

ईस के चरन चित राखि नित भाव भरे ।

पर उपकार की हू बानि नाहि टारिये ॥

किंमत जगत खरी नामकी चाहत जो तो ।

आपदा बडी हू पै हिम्मत न हारिये ॥

( ४७ )

## मानव जीवन के फलते हैं

आपद पुञ्ज धिरे दिन रैन प्रपञ्च के जालनि जे जकरे हैं ।

कोउ सहाय नहीं जिनके जनु दैव हि ने नभ सों पटके हैं ॥

बारहिं बार बचाय तिन्हें उन आंखिन पेखि जे मोद लहे हैं ।

साधु समाज वही नित चाहत मानव जीवन के फलते हैं ॥

( ४८ )

## गम चीज बड़ी

सब राजनि के मधि बीच सभा परनारी करी बल आनि खडी  
बिनु वस्त्र कियौ चहँतोहू युधिष्ठिर धीर सही यै अनीति बड़ी  
जस उज्ज्वल फैलि दिसान गयो जय संपत हू तिहिं पांव पडी  
करि देखु विचार भलँ मन में जग में सब सों गम चीज बड़ी

( ४९ )

## गरीब निवाज हैं

आब घटै न अँधेरेहु में दिढ देखे परैं सपने से समाज हैं  
काल महावत तीच्छन आंसु के ताप गलैं नहि सुन्दर साज हैं  
लोकन के सिर पँच लसैं दुति देखि गुरु कवि पावत लाज हैं  
ओस की बूंदनि बीच विराजत कीमति मोती गरीब निवाज हैं

( ५० )

## लोक को नाथ

बारहि बार अकाल परै भर पेट मिलै नहि आज तो नाज है  
मौसम ताप रु सीत हू आवत रोग सदा बहु साजत साज है  
भाग धनी मुंह बाये रहैं इत दीन की कौन बचावत लाज है  
तो हू सुनो न डरो जियमें कहुं लोक को नाथ गरीब निवाज है



( ५१ )

## सुजन समागम

मोह पिंजरा में बँधि आयो परपंच बीच ।

पायो नहिं पार लख चौरासी झमेला को ॥

बन्धन पै बन्ध नित परत परत भयो ।

सेह कैसे कांटन को जाल ठेल ठेला को ॥

पाय तनु मनुज न तोरी कर्म पास डोरी ।

यों ही बितायो सब जीवन अधेला को ॥

अज हू विचारि जीव सार है जगत एक ।

सुजन समागम ही मेला सुभ वेला की ॥

( ५२ )

## बात तो बनी रहै

सांच सब प्रीति अरु रीति निजबंस की ही ।

सील के प्रकास ना कलङ्क की कनी रहै ॥

कारज समाज साधिबे को उतसाह मन ।

पर उपकार रत विद्या को धनी रहै ॥

दोज विधुसम सब लखत नवावैं सीस ।

बीस बिसे पांचन में साख हू सनी रहै ॥

मानुष को तन पाय सार यही मानों सदा ।

जाय सरबस्व भलै बात तो बनी रहै ॥

( ५३ )

## लाज न आई

नीति बची नहिं रीति बची परतीति परस्पर की हु गँवाई ।

वेद रु शास्त्र भुलाय दये तप तेज की कौन रही है बडाई ॥

बुद्धि नसी पुनि शक्ति नसी सब संपति देससों दूर पराई ।

यों सब खोय गुमान करै अजहू तुहि भारत लाज न आई ॥

( ५४ )

## मेघ मँडराए हैं

मानिनि मिजाज मानरासि मनु मीडिबे कों ।

मालिक मनोज मत्त महिस मँगाए हैं ॥

मघवा महीके मुद मिलन महोत्सव में ।

मंडप महान मजलिस मन भाए हैं ॥

मारतंड मंदिर में महिला मरीचि मिलि ।

मसून मसीजल सों माँडन मँडाये हैं ॥



सरकत मनिमय मंडित महीधर में ।

मारुत महित मग मेघ मँडराये हैं ॥

( ५५ )

## बादल साजि बरात

आवत हैं उततैं मघवावर बादल साजि बरात उछाह सों  
बिज्जुन के चमकावत कोतिल फूलझरी चले बूँद अथाह सों  
इन्दु बधून मिसै मँहदीन रचाय कैं फूल इतैं अति चाह सों  
साजत सारी हरी सुथरी यह भूमि वधू बड़ ब्याह उमाह सों

( ५६ )

## जलधर सज्जा

उमँडि उमँडि दल चारों दिशा छाये रहे ।

बिजुरी पताका गहे कोप करि करिके ॥

दबिगो प्रकास घन तिमिर चहूँधाँ छायो ।

दीखि नाहिं परत पदारथ हू घर के ॥

तरु लपटाय रही सुभग नवेली बेलि ।

धाय चलीं नदियाँ समीप सिन्धु नरके ॥

चलन विदेसन की बात हू न कीजै कन्त ।

लागै भीति भारी साज देखि जलधर के ॥

( ५७ )

## सावन

बदरा बरसावन ताप नसावन बिज्जु छटा दरसावन है ।  
 वर ही हरसावन भेक रसावन चातक चञ्चु चसावन है ॥  
 कलिका विकसावन मान खसावन नेह की गांठ कसावन है ।  
 विरही तरसावन पी परसावन ही सरसावन सावन है ॥

( ५८ )

## सनेह

लावन लागी धरा जलधार सुधासम ताप बुझावन में ।  
 रावन सो यह धीर समीर बियोगिनि के डरपावन में ॥  
 गावन सोर पपीहन के मन लाग्यौ रहै मन भावन में ।  
 आवन जावन छांडि सबै सरसात सनेह सों सावन में ॥

( ५ )

## लाज हु भाज गई

सावन मास उमंगि घटा नभ में चहुँ ओर छई सु छई री ।  
 झूलत कुंजन में मुहि स्याम अचानक भेंटि लई सु लई री ॥



कान कछू कहि कैं हैंसि कैं मन भावन सैन दई सु दई री ।  
संग सहेलिन कौन गनै सखि लाजहुँ भाज गई सु गई री ॥

( ६० )

## तीज को मेला

सोरह भाँति सिंगार सजीं महिलान सों मारग ठेलमठेला ।  
को तिलअंट मतंग विभूषित, मोटर गाड़िन को हू झमेला ॥  
रंग बिरंग बने बिचरैं युवमण्डल दीख न कोउ अकेला ।  
आनंद बूंद गिरावत मेघ सुशोभित सावन तीजको मेला ॥

( ६१ )

## सुहाई तीज सावनी

सावनी घटानि छटा सोहैं स्याम रूप उहाँ ।  
मत्त गजपांति इहाँ मन हरसावनी ॥  
सावनी फुहारैं उहाँ तपत सिरात इहाँ ।  
चलत फँवारन की बूँदें सरसावनी ॥

सावनी गरज जुत बिज्जु उहाँ बाजि राजि ।

धोंसा धरें रत्न जरी इत दरसावनी ॥

सावनी सुसंपदा लजान नभ मंडल की ।

भूपन महल सुहाई तीज सावनी ॥

( ६२ )

## पावस

फूले हैं कदम्ब जुही मौलसिरी केवरा हू ।

केतकी सुबास रोर भौरनि मचाई है ॥

दारिम दरक्का नासपाती पियरानी पकी ।

दाख खुरमानी पाई अति मधुराई है ॥

घटा की छटान गनि न बस मुनीन मन ।

सीतल समीर चिर तपनि बुझाई है ॥

पिय पी पपीहा करें केका रचैं नीलकण्ठ ।

दादुर दकालैं अहो पावस सुहाई है ॥

( ६३ )

## सुहाई है

बाजि गजघटा बीच वीर खग बिज्जुराजैं ।

सज्जन समाज सैल सोभा सरसाई है ॥



सुकवि मयूर केका करत चहूँधां चार ।

चारन सुचातकनि धुनि सुखदाई है ॥

अरिजन उडुगन दिपति छिपानी कहूँ ।

इत उत सम्पदा नदी हू उमडाई है ॥

भारतीय भव्यन के पुण्य सम्पदा सों भरे ।

सदन सदा ही यह पावस सुहाई है ॥

( ६४ )

### शरद

सुन्दर सलिल सर सरिता सर सौवन ।

सुच्छ सत सैकतनि सुखमा सजावनी ॥

सुघर सुहाग सित सुमन समूह सार ।

सुरभि समीरन सनेह सरसावनी ॥

स्यन्दनाङ्ग सितपत्र सारस समाज सिरै ।

सहज समद सुर सबद सुनावनी ॥

संभु सिर सुरसरि सुभग सरोज सम ।

सीतकर सोभा सनी सरद सुहावनी ॥

( ६५ )

### सुहावनी

ऊपर बितान सम सोहत गगन नील ।

भूमि पै कलिन्दजा तरङ्गनि छटा घनी ॥

चाँदीद्रवलेप सम चाँदनी चमकै उतै ।

रत्न राजि तुल्य इतैं सिकता सुपावनी ॥

तारा दुति भास उहाँ कुमुद विकास इहाँ ।

ससि बहु हंसनि अनूप सुखमा सनी ॥

नभ राशिलीला रासलीला मही मोद भरी ।

आई ब्रजमण्डल में सरद सुहावनी ॥

( ६६ )

## हिमन्त ऋतु आई है

जरत निदाघ बची बिज्जु चकाचौंध सही ।

कैसे हू बिताई पुनि सरद जुन्हाई है ॥

अब तो कैपत गात हिय हू धरहरात ।

तुम बिन ना सुहात केसर मलाई है ॥

मृगमद बिन्दु भाल नैन मुख पान लाल ।

गाव गीत जूथ बाल ओढ़त दुलाई है ॥

अजहु धरन्त का अनन्त निठुराई कन्त ।

विरह दुरन्त ये हिमन्त ऋतु आई है ॥



( ६७ )

## सीत सुखदाई है

मनि गन मंडित महल मनोहर में,  
 मखमल गादिन पै मसँद मँढाई है ।  
 केसर रु कसतूरी कलित कलान कंद,  
 को सन कचोरी दूध कढ़त कराही है ॥  
 ललित कलान लगे लोग लार लागे रहैं,  
 मुख अरु नैननि लसै पान अरुनाई है ।  
 कुसुम सर सरबस सुन्दरी ससांकमुखी,  
 साजै सेज सोभा सदा सीत सुखदाई है ॥

( ६८ )

## सीतल बहत है

सुभग सरोजनि सुहाग हू सिरानो सिरै,  
 कैसे कै सुमन सर सायक लहत है ।  
 सर पद सबद न सरस सुनाई देत,  
 कौनसी सरासन पै सिंजनी रहत है ॥

सीत भीत सकल सकुन्त सुर भूलि रहे,  
 कोऊ नहिं सीतकर सुसमा सहत है,  
 संबरारि सरबस सुखद सँजोगिन को,  
 सिसिर समीर सुचि सीतल बहत है ॥

( ६९ )

## सुधाकर कपाली को

अद्भुत मची है होरी आज सम्भु मंदिर में,  
 डमरू बजावैं गन नदै सिंह काली को ॥  
 भूत किलकारैं करें जोगिनी अटट्टहास;  
 बचत बिताल ताल देय देय ताली को ॥  
 नाग फुफकारनि सों उड़त गुलाल भूरि,  
 सिखर हिमाचल बन्यो है गढ़ लाली को ॥  
 गङ्गा जलधार छोड़ें पिचकी सी ईस तन,  
 ढारैं सुधाजल सुधाकर कपाली को ॥



( ६९ )

## फाग सुहाई

लं पिचकीरु अवीर चले इत मंडल ग्वालन बीच कन्हाई ।  
 प्यारी उतै वृषभानु लली सजि नारि नवेलिन लै संग धाई ॥  
 राग उभंग बन्यो सर रंग को लाज गुलाल दर्ई है उड़ाई ।  
 आनंद देखत देव विमाननि यों ब्रजमंडल फाग सुहाई ॥

( ७० )

## ऋतुराज के वासर

पात झरे सव वल्लिन के कहँ पंकज भौर बुलावत हैं ।  
 चंद जुन्हाई रुचै नहिं नैन न वारि बयारि सुहावत हैं ॥  
 कोकिल काकलि छोडि डवीं कहुं सीत में बाग हु भावत हैं ।  
 यों रसिया छिन धीर धरो ऋतुराज के वासर आवत हैं ॥

( ७१ )

## वारन वसन्त है

मञ्जरि रसालनि की भोतिन जराव सिर ।  
 सरसों सुभग कुथ ओढ़ें सरसन्त हैं ॥  
 विकच कुसुम नाना रत्नन की साजि सजै ।  
 बेलि अलवेली भूमि रचना लसन्त हैं ॥

मदन मंहीप जयढक्का पिक कूक पीठ ।

अविर गुलाल लाल झण्डा हू उड़न्त हैं ॥

मन्द मन्द सुरभित सीतल समीर गति ।

झूमत चलत वर वारन वसन्त हैं ॥

( ७२ )

## वसन्तऋतु आरती

मंजरी रसाल भल मुकुट मरोर दार ।

फूलत पलास छल पटुका सँवारती ॥

बालातप खोर रचि विविध कुसुम भाल ।

पल्लव नवीन कान कुण्डल निहारती ॥

धूपत पराग पूर दच्छिन पवन धूप ।

सुभग पकाय फल भोग अग्न धारती ॥

सरसौं सुहाग मिस सहस जगाय बाती ।

साजै भगवंत की वसन्त ऋतु आरती ॥

( ७३ )

## श्रीपति नींद न आवै

कहुं निकुंज मधि कीन कहा निसि सब जग बात बनावै ।

सिथिल अंग अवहू वह पोटी नैक न सुधि चित लावै ॥



फैली चहुंधां दुति प्रभात की हँसि हँसि सखी जगावै ।  
 त्रिविध बयार लगत तन तरुणी श्रीपति नींद न आवै ॥  
 आम मंजरी बैठि हरख सों कोकिल पंचम गावै ।  
 खिलत गुलाब कली चटकारी दै दै प्रभुहिं जगावै ॥  
 मृदुल किरन निज डारि भाजु पै जागर समय बतावै ।  
 त्रिविध बयार लगत तन तरुणी ! श्रीपति नींद न आवै ॥  
 कहा कहौं तासों जो कवि बन कविन कुमार्ग सिखावै ।  
 सरद समय में देत समस्या ऋतु बसन्त वरनावै ॥  
 हृदय चच्छु सों लखत अंध हू कहहु आज कस भावै ।  
 त्रिविध बयार लगत तन तरुणी श्रीपति नींद न आवै ॥

( ७४ )

## ब्याह उमाह सों

प्रीति की रीति लखी न परै परतीति प्रतिच्छन बाढै उछाह सों ।  
 देखत जोरि असीस कहैं गुरु बैरि जरैं अति डाह की दाह सों ॥  
 दूध सिता सो मिलै तन औ मन नैकरही न जुटी तिय नाह सों ।  
 चाह अथाह न राह लहैं दोउ छाके हैं साहलों ब्याह उमाह सों ॥

( ७५ )

## रात जात नहिं जानी है

सुन्दर सुघर रूप तनु तरुनाई छाई ।

नूतन रसाल पै बसन्त सी सुहानी है ।

मन में उछाह दिन रैन चाह देखिवे की ।

चंद चांदनी सो सुभ जोग सुख दानी है ॥

करि परिरंभ पोढे चित्रसाला फूल सेज ।

नैन मद छाके मुख अटपट बानी है ॥

फूले ना समात गात पूरी हो न पात बात ।

दंपति नवले रात जात नहिं जानी है ॥

( ७६ )

## सनेह भरी बतियां

अँखियन वारन सो घन तम तोम टारि ।

सोभा अनूप देत जगमगाय छतियां ॥

आन जान मारग की मेटि अटकाव भलैं ।

सुवरन सरस सजात सुख रतियां ॥

रतन जरीसी सित कुसुम झरी सी सुधा ।

धारक मयूर वन की भांति सी लगतियां ॥

आज यह उच्छव को समय सुहानो कंत ।

करत उदीत ये सनेह भरी बतियां ॥

( ७७ )

## बतियां

इत उत बिजुरी सी चमक चहूँधा दीखै ।

आंख जरी जात क्यों सिराय सकैं छतियां ॥



सुवरन रतन छिपे हैं कौन कौन कैसे ।

कोरे कागदन सो सुहाय सुख रतियां ॥  
सरस सुगन्ध खनी तजि कै पुरानी रीति ।

भई निरगन्ध छवि बल्लभ लगतियां ॥  
आज कन्त दीपमाला उच्छव कहत लोग ।

कहां धौं सिधारी वे सनेह भरी बतियां ॥

( ७८ )

### “कमल की”

देखि मुख दिव्य कान्ति लाग्यो छय रोग चन्द ।

अधर विलोकि कांपी देह नवदल की ॥  
दसननि आगे दारिमी को दरकानो हियो ।

ग्रीवा पेखि संख सीखी वास त्रिधि जल की ॥  
सुभग सराहि बाहु भंगुर मृनाल हेम ।

देह छवि हारि हेरी सरन अनल की ॥  
कवि जन कैसे वाको वरनि सकेंगे रूप ।

पाद संपदा सों सोभा सँकुची कमल की ॥

( ७९ )

### “राखी”

सूत सिरै रेसम के राजत विविध रूप ।

मेलि एक जीव कै सनेह सनि साखी है ॥

केसर कुसुम पीत अच्छत बँधाय पढ़ ।  
 सुवरन जोग बड़भाग वेद भाखी है ॥  
 मोतिन मँढ़ाय मन्त्र मंगल पढ़ाय पुनि ।  
 मान महिपाल मनिबन्ध पर लाखी है ॥  
 रिखि रचि राखी राजा राव रीझि राखी ।  
 रीति राखिबे को रुचि रंग भरी राखी है ॥

( ८० )

## “राखी”

राखी है अडिग मरजाद बंस आपने की ।  
 जगत जननि पाद पद्म सुधा चाखी है ॥  
 चाखी है चखनि चमाचम सभ्य देसन की ।  
 पोलो खेल जीत जग ठोस रची साखी है ॥  
 साखी है समस्त लोक नीति बल धीरज की ।  
 किन्ति कमनीय कविजन बहु भाखी है ॥  
 भाखी है पुरान वेद मूल सब मंगल की ।  
 तातेँ गुरु लोग धारी मान' कर राखी है ॥

---

१. जयपुर नरेश महाराजा मानसिंहजी ।



( ८१ )

## दिवाली

नाहिं कमला के चित्र चित्रित चितेरे करैं ।

ब्लाक छापि तिनहीं पै पूजा विधि सारी है ॥

रोरी अरु मोरी हू रँगी है नए रंग मांहि ।

कृत्रिम कपूर तैं सु आरती उतारी है ॥

पील सोत तेल बाती झाड औ फनूसन कों ।

दैकें विदा बिजली के तार ही की बारी है ॥

सोना चांदी रत्न गए नोटन की भेंट धरी ।

नव्य सभ्यता की आज दिपति दिवारी है ॥

( ८२ )

## जयपुर दुर्ग पर दिवाली

आज कमलालया के पाद पद्म पूजिबे कों ।

मंडली नछत्रन की जुरी जनु सारी है ॥

भेंट जग जननी के चरन चढायवें कों ।

अनुपम रत्न राशि नगर पसारी है ॥

दिव्य लोक वीथी चारि पूरब नृपति गन ।

पुन्य ज्योति छटा कैधों फैल रही न्यारी है ॥

मान' भूप कीर्ति भाल वैदिन बनाव किधौं ।

जयपुर दुर्ग पर दिपति दिवारी है ॥

( ८३ )

## राम बाग

फूल रही रूप रूप फूलों से अनेक कयारी ।

चारों ओर साजा वनदेवता सुहाग है ॥  
चलते फुहारे रंग रगके निहारे भले ।

रितुन रचाया भानो मिल जुल फाग है ॥  
बीचमें विराजे आम्र चूमते महल जहाँ ।

रात दिन रहता अनूठा रंग राग है ॥  
चैत्ररथ नन्दन भी देख के लजाते जिसे ।

जयपुर नगर बीच ऐसा राम बाग है ॥

( ८४ )

## “हुसाला है”

कंठ मधि छंद बन्ध ललित विराजै गिरा ।

सुवरन गुंथी मनु मोतिन की माला है ॥

भावरस विज्ञ परिपूरत सुहात सदा ।

आनन मधुर ज्यों पियूख भल प्याला है ॥

१. जयपुर नरेश सवाई मानसिंहजी ।



उक्ति युक्ति चातुरी बनात बस लोकन सों ।  
 जुग जुग छाई लसै किति जिन भाला है ॥  
 पूजि पद नाथ माथ धरि कै सहस भेंट ।  
 ऐसे कवि राजन कों दीजत दुसाला है ॥

( ८५ )

## “सितारे हैं”

काम कला नाटक के सुखद अरंभ हेतु ।  
 कीधों ससि सूत्रधार दीपक पजारे हैं ॥  
 पिय दुजराज जू के मिलन उछाह कीधों ।  
 ललना सरद बेनी मुकता सिंगारे हैं ॥  
 पूजि जगदम्बा पाद पद्म बहु भाय कीधों ।  
 देव गन अंजलिन पुहुप पसारे हैं ।  
 देखो नभ मण्डल में चमकत तारा ये ।  
 निसि सुन्दरी की सिरै सारी के सितारे हैं ॥

( ८६ )

## “लंका में”

भानुगति उत्तर औ दक्षिण हू देखियत ।  
 तातें दिन वाढ़त घटत रहै बंका में ॥

पाद ओर नीची भूमि मानत हैं लोक सब ।  
 दूर की दिशा को लखें छोटी अति शंका में ॥  
 भूमि मध्य बिन्दु पै विराजै यही स्वर्णपुरी ।  
 दृष्टि सूत्र बक्र नहीं होत यहाँ झंका में ॥  
 ताते ऋतुराज सदा वास करे याके मधि ।  
 घोस रात सतत समान होत लंका में ॥

( ८७ )

## “दिगीस दहलाते हैं”

अति ही भयंकर रचा है युद्ध योरूप ने ।  
 सुनि सुनि कातरों के हिये हहराते हैं ॥  
 कोटि कोटि वीर दल बादल उमड़ि रहे ।  
 जल थल गगन छिपाय छतराते हैं ॥  
 दन्दनाते तोप टैङ्क बम बरसाते आग ।  
 मार मार भूमि अंग टूटि टूटि जाते हैं ॥  
 फटती कमठ पीठ धुनते अहीस सीस ।  
 चिक्करत दिग्गज दिगीस दहलाते है ॥



( ८८ )

## “जात नहिं जानी है”

सुनत विमान गाथा सोच न समानी मन ।

बाबुन बखानी यह बुढिया कहानी है ॥

आज परतच्छ या विलून प्राच्य सभ्यता के ।

जंग बिच नवयुग गोली सी चलानी है ॥

देखें बाल वृद्ध नर नारी आसमान ओर ।

कहत हवाई कोऊ चील चित मानी है ॥

छिन मँडरानी आंख उठत उडानी परी ।

नैक न पिछानी कहूँ जात नहिं जानी है ॥

( ८९ )

## गोविन्द के चरण

गोचारक गोविन्दके नमहुँ चरण जलजात ।

जिन नख इन्दु छटा छुवत भय तम तुरत विलात ॥







# संस्कृत-रचना

ममृक्षु भवन्



## गणपतिः

सिन्दूरपूरारणिताऽखिलाङ्गो  
यज्ञोपवीतोऽकृतनागराजः  
उद्दामविघ्नौघविघातदक्षः  
पायादपायादनिशं गणेशः

## देवी-पदकमल-गीतिः

( १ )

देवि तव सुखदं पदकमलम् ।  
भजे भवतापहरं विमलम् ॥  
रणन्मणिमञ्जुलमञ्जीरं  
विराजद्विमलनखरहीरम् ।  
विजितविबुधारिशिरसि निहितं  
सुरार्पितकुसुमनिकरपिहितम् ॥  
निःश्रेयसपदवाञ्छया सततं यदाश्रयन्ति  
भक्तकुलानि दुरितविमुखानि हि मधुकरतामुपयन्ति ।  
यन्ति ननु जनुषः फलममलम्  
देवि तव सुखदं पदकमलम् ॥

( २ )

त्वमसि खलु जननि जगत्येका  
गुणभिदा भासि दृशाऽनेका ।  
परा वाङ्मनसपथाऽतीता  
योगिभिः कथमपि हृदि नीता ॥

शतमखचतुर्मुखादयो महिमानं तु तवेव  
 गायन्तीह सदा जगदीश्वरि पारं यान्ति तु नैव ।  
 नैव वेदा अपि वदितुमलं  
 देवि, तव सुखदं पदकमलम् ॥

( ३ )

रजोमयि जननि निखिलजगताम्  
 सत्त्वमयि परिपालिनि भवताम् ।  
 तमोमयि संहरणासक्ते  
 त्रिविधगुणकर्मस्वनुरक्ते ॥

तत्त्वज्ञानपवित्रिते जनमानसे विभासि  
 त्रिगुणातीता चित्सुखरूपा नैव विकारं यासि ।  
 यासि नहि कथमपि कर्मफलम्  
 देवि, तव सुखदं पदकमलम् ॥

( ४ )

जना ये भवदाश्रयवसुखाः  
 भवन्ति न कथमपि लब्धसुखाः ।  
 विषयसुखवासनया निहताः  
 पतन्ति हि भवकूपेऽविरताः ॥

ते तु विमलमतयो बुधा विविधापदस्त्यजन्ति  
 ये भुवनत्रयवाञ्छितभर्त्रा भवतीमम्ब ! भजन्ति ।  
 भजन्ति त एव सुखं सकलम्  
 देवि तव सुखदं पदकमलम् ॥  
 भजे भव तापहरं विमलम् ।



## दयामयी

देवामोदमण्डनासु दैत्यदर्पखण्डनासु  
 यत्प्रभावलीलागुरुगाथा गायति त्रयो ।  
 यस्य विधिवन्धपादपङ्कजपरागजुषां  
 करगतलब्धसमा सम्पदां चतुष्टयी ॥  
 योगयागयोजनाभिः कथमपि लब्धोदयो  
 यामनाराध्य नरो सहसा जायते भयी ।  
 भावरतभक्तकुले शर्मसन्तनोतु सदा  
 महिषविमर्दिनी सा भाविता दयामयी ॥

## श्यामा

श्यामां प्रकाशपरमामवन्तीं छायया जगत्  
 चिदानन्दमयीं शान्तां मायां शरणमाश्रये ।

## वाणी

अलङ्काराढ्यसर्वाङ्गीं भावाराध्यां रसात्मिकाम्  
 निरस्तदोषां सगुणामर्थदां वाचमाश्रये ।

## वेद-विद्या

शान्ते निःसीमधास्मि स्वरचितमखिलं स्वन्तराधाय सुप्ते ।  
 सीमानं कल्पयन्ती कलितगुणकला या प्रबोधं दधाति ॥  
 ब्रह्माणं विष्णुमीशं सुरपतिमपि या स्वस्वकार्ये नियुङ्क्ते ।  
 चिच्छक्तिः सादिमाया वितरतु भविकं शाश्वतं वेदविद्या ॥

## भगवती

भजामस्त्वत्पादौ सकलसुरचूडामणिलसन्  
मयूखै राजन्तौ सदयहृदये देवि वचसां ।  
हृतापाया मातस्तव पदसरोजस्मरणतो  
गताः सिद्धिं सम्यक् श्रियमनुभवन्तीह विबुधाः ॥

## शिवः

शान्तात्मभिरासेव्यं शीतकराकलितशेखरं शमिनम्  
शङ्करमाश्रितमुखदं शैलसुता प्रणयिनं नौमि ।  
जयति स भगवान् शम्भुर्भुवनोदयलालनप्रलयलीलः  
गिरिजातपः फलं किल येन शरीरार्धमपि दत्तम् ॥

## विष्णुः

यत्रामृताह्वमकरन्दमवाप्तुकामा  
गुञ्जन्ति योगिजनषट्चरणाश्चरन्तः ।  
देवेन्द्रमौलिमुकुटांशुविराजितं तद्  
बन्धेऽब्धिशायि परमात्मपदारविन्दम् ॥

## हरिः

यदीयकरुणाप्लुतस्फुटकटाक्षलक्ष्मीलवं  
जनः सुखमुपाश्रितस्त्रिविधमेव तापं तरेत् ।  
अशेषभुवनोद्भवस्थितिलयाश्च यल्लीलया  
वृतं कमलया मुदा कुवलयक्ष्मीडे हरिम् ॥



छवि की किरणें

0152, LN 38, 148

व्यासः

141

कलिवात्याकृतावतं संसारान्ध्रं तृतीर्षताम् ।

221

यदग्नीः पोतनिभा भाति तं व्यासं शिरसा नतः ॥

विद्या

संस्कृत्य बुद्धिधरणीं गुरुणा प्रयुक्ता

नित्यं शुभाशुभविवेककृतालवाला ।

सिक्ताऽनिशं श्रमजलेन सुकीर्त्तिपुष्पा

कामानियं फलति कल्पलतेव विद्या ॥

वर्षा मनः कर्षति

लीलोन्मीलितमालतीपरिमलाऽस्वादैकबद्धादर-

भ्राम्यद्भृङ्गकदम्बचारुरणितैर्झङ्कारयन्त्यो दिशः ।

आच्छाद्याम्बरमाव्रयन्ति वसुधां वर्षा मनः कर्षति

स्फूर्जत् कृष्णघनालिलब्धवसतिर्विद्युद्विद्यद्योतिका

पुण्डरीकम्

क्रीडासक्ते भगवति हरौ कर्तुंकामेऽस्य तोषं

प्रादुर्भूतेऽहमहमिकया तत्र सर्वतुंसंघे ।

ग्रीष्मज्वालाजटिलमहसां हीयते नो वनश्री-

र्नावश्यायैः पयसि सरसां दूयते पुण्डरीकम् ॥

कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः

( १ )

प्राज्ञाः ! परहिते वक्षाः ! दीक्षिता ! देशसेवने ।

धुर्या ! विचार्यतामार्याः ! कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

ॐ शुभं भव वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय

( २ )

विचारितेऽपि बहुधा व्यवहारो न चेत्तया ।  
'वाचारम्भण' मात्रेण कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ३ )

अन्येष्वप्यनुरज्यत्सु . विरक्ता वयमास्महे ।  
गुणेषु देवभारत्याः कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ४ )

प्रकृत्याऽमरभाषापि मृतेति व्यपदिश्यते ।  
यत्रायमादरोऽस्माकं कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ५ )

बद्धानुरागा अन्यासु मातृभक्तिपराङ्मुखाः ।  
निस्त्रपा भारतीयास्तु कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ६ )

रोति - नीति - व्यवहृती - रन्यदीया उपास्महे ।  
स्वाभिमानं समुत्सृज्य कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ७ )

ऋषयो मुनयो मान्याः पुण्या राजर्षयश्च ये ।  
न सन्त्यस्माकमादर्शाः कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ८ )

हाक्सले - डार्विनमतं कणादकपिलाधिकम् ।  
ननु संमतमस्माकं कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥



( ९ )

कविता कालिदासस्य शैक्सपीयरसन्निधौ ।  
कृता कर्पादिकाक्रेया कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( १० )

उत्तमास्वपि विद्यासु परप्रत्ययनेयता ।  
स्वकीयास्विह जागर्ति कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ११ )

अहेतुकं द्विजाग्रद्याणां साङ्गवेदानुशीलनम् ।  
श्रूयते पुस्तकेष्वेव कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( १२ )

पठन्तीह पुरा विद्यां विज्ञा विज्ञानलोलुपाः ।  
अधुना भृतिलाभाय कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( १३ )

न विद्या वन्द्यताहेतुर्न गुणा गौरवास्पदम् ।  
धननिष्ठा प्रतिष्ठाद्य कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( १४ )

शर्मणे कर्मणे स्वस्ति विद्या विलयमृच्छतु ।  
द्रव्यलाभाय नो यत्नः कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( १५ )

किं कार्यं विद्ययेत्यास्था धनिनामत्र दुर्लभा ।  
उदरम्भरयश्चान्ये कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( १६ )

बुभुक्षां न क्षयं नेतुं क्षमं व्याकृतिचर्वणम् ।  
न पिपासां काव्यरसः कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( १७ )

प्रत्यहं प्रातरुत्थाय तैलं लवणमिन्धनम् ।  
इति चिन्ताकुले लोके कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( १८ )

शताब्दी विंशतितमी, दुर्दमो जठरानलः ।  
तच्छान्तयेऽस्तु नो यत्नः कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( १९ )

‘स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनापि प्रपूर्यते’ ।  
गतः प्रवादो ग्राम्याणां कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( २० )

विलासिजनताप्राये समये सम्यतामये ।  
शतान्यूनो न निर्वाहः कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( २१ )

विद्याविनययुक्तोऽपि कोटबूटविर्वाजितः ।  
ग्राम्य इत्यवधीर्येत कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( २२ )

देवादुपस्थिता सेयं दुरवस्थात्र भारते ।  
दुश्चिकित्स्या समाजस्य कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥



( २३ )

विद्वांसो विततप्रज्ञाः क्षमास्तत्त्वविनिर्णये ।  
नैनं विचिन्तयन्त्यर्थं कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( २४ )

लक्षणानि परिष्कृतं प्रभवः पण्डितोत्तमाः ।  
शिक्षापथं न पश्यन्ति कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( २५ )

अशक्ताः पारगमने पाणिनीयपयोनिधेः ।  
बहवो विधिनतोत्साहाः कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( २६ )

नोदेति मानसे येषां पाणिनीयप्रभाकरः ।  
न सन्ति तत्कृते दीपाः कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( २७ )

द्रष्टुं दैवान्त यैर्लभ्या पाणिनीयमणिप्रभा ।  
नाप्नुयुः काचमपि चेत् कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( २८ )

बद्धा व्याकृतिसूत्रेण विना सूत्रसमुन्नतिम् ।  
वाक् सारिकाप्युन्नमेत्किं कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( २९ )

समयोचितसंस्कारः समर्थेन समर्थ्यते ।  
संस्कारमन्तरा प्राज्ञाः ? कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ३० )

मत्वापि सर्वकार्येषु साधारण्येन हेतुताम् ।  
समयं नानुरन्धन्ति कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ३१ )

स्वां स्वां भाषामुन्नयन्तु परे यत्नशतैर्वयम् ।  
मग्नास्तन्द्रातडागान्तः कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ३२ )

विधातुं नु विपश्चिद्विर्भाषाऽभिज्ञानसौकरीम् ।  
कति सम्पादिता ग्रन्था कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ३३ )

सभाभित्तीर्ध्वनयितुं पटवो वाग्विजृम्भणैः ।  
कति व्यवहरन्त्येनां कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ३४ )

पाण्डित्यभूषणं नाम व्यवहारविमुग्धता ।  
इति यत्र मतिस्तत्र कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ३५-३६ )

औदासीन्यमनुत्साहमालस्यं दैवचिन्तनम् ।  
लोकप्रवृत्तिखिन्नत्वं युगनिन्दां विशेषतः ॥  
परबुद्धेरवज्ञानं शिक्षयन्ते शिक्षया समम् ।  
न कार्यक्षमतां छात्राः कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥



( ३७-३८ )

उपकारं समाजस्य कञ्चित्कर्तुमनीश्वराः ।  
अशिक्षिताश्च समये समयोचितसम्भ्यताम् ॥  
बुद्धिवैदुष्यसम्पन्ना अपि नैव यथोचितम् ।  
संस्कृतज्ञाः सत्क्रियन्ते कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

( ३९ )

अपि संस्कृतसाध्येषु कार्येषु समपेक्ष्यते ।  
नव्यभव्यो 'ग्रेज्युएटः' कथं स्यात्संस्कृतोन्नतिः ॥

गीयताम्

गीयतां न गाथा धनमदबधिराणां पुर-  
श्चादुशतैरात्मा ननु लाघवं न नीयताम् ।  
नीयतां नयेन कुलं कञ्चिन्महिमानमहो  
सादरं समोपकृतौ तनुरपि दीयतां ॥  
दीयतां न दृष्टिरन्यवसुवनितासु न वा  
श्रवसाप्यहह परनिन्दाविषं पीयताम् ।  
पीयतां पुराणगणे द्वैपायनवाक्यसुधां  
मानसमदीय ! यशो गोपशिशोर्गीयताम् ॥

परिवर्तनीयम्

विलुप्तवेदं मुषितार्थसार्थ-  
मज्ञाततत्त्वं विकलं फलोन्म ।  
भूरिप्रयासं विपरीतकालं  
वर्त्मतदार्याः परिवर्तनीयम् ॥

## विद्यार्जने के गुणाः

यत् सर्वेषु सुखेषु निःस्पृहता बद्धव्रतं स्थायते ।  
 शुश्रूषा च गुरोः कुलेऽनवरतं कष्टा समालम्ब्यते ॥  
 नीयन्ते च निशाः प्रजागरवता यच्छास्त्रमभ्यस्यता ।  
 तन्मे ब्रूहि सखे, त्वयात्र कलिता विद्यार्जने के गुणः ॥

“हरन्ति ये सर्वजनस्य चेतः”

तरन्ति शोकं हि महानुभावा-  
 द्धरन्ति पुण्ये वसुधा प्रदेशे ।  
 स्मरन्ति नैतान् विषयान् कदाचित्  
 हरन्ति ये सर्वजनस्य चेतः ॥

स्वदेशजाताः सुखदायका इमे  
 पदार्थसार्था उपयोजनीयाः ।  
 न तेऽन्यदीयाः परिणामदुःखा  
 हरन्ति ये सर्वजनस्य चेतः ॥

## जयपुरनरेशं प्रत्याशिषः

भवत्प्रतापभानुरेष भूतलेऽभिभासतां ।  
 सुहृज्जनालिसम्पदम्बुजावलिं विकासयन् ॥  
 निमीलयन् समुद्धतारिचक्रकैरवाकरं ।  
 विमूलयंश्च दुर्जनादिजं प्रजाभयं तमः ॥

## पितृश्राद्धामन्त्रणम्

श्रीमत्प्रोद्यदुदारसुन्दरगुणग्रामावलीमण्डितान् ।  
 विद्वन्मण्डलीयमधिषणाप्रागल्भ्यविभ्राजितान् ॥



नानाम्नायपुराणशास्त्रनिचयाकूपारपारंगतान् ।  
 पुण्याचारपरोपकारनिरतानावेदये सादरम् ॥  
 तातो गोकुलचन्द्र इत्यभिधया ख्यातो वयस्यन्तिमे ।  
 गोविन्दं समुपाश्रयन्दिवमगाद्वात्सल्यमुत्सृज्य नः ॥  
 तस्याद्यं किल कार्तिके सितदले श्राद्धं दशम्यां तिथौ ।  
 भावीत्येतदवेत्य भूरिकृपया संगत्य संपूर्यताम् ॥

विद्वन्मूर्धन्य पण्डितप्रवरश्रीसभापतिउपाध्याय-  
 महानुभावेभ्यः राष्ट्रपतिसम्मानपद्यवद्ववर्धापनस्योत्तरम्

भवादृशां कृपादृशैव भारतेशसत्कृतिं  
 गुणैर्न लेशतोऽपि संगतो जनोऽयमाप्तवान्  
 भवत्कृपादृगेव साऽभिनन्द्यतामतो बहे-  
 दहं तु भाजनीकृतस्तयेति धन्यतां गतः

महर्षिकुलवैभवव्याख्यारंभः

सर्वतन्त्रस्वतन्त्रश्रीमधुसूदनशर्मणाम् ।  
 सूर्याचन्द्रायितं स्वान्ते निधाय पदयुग्मकम् ॥  
 तत्कृपापाङ्गसंपातसंप्राप्तज्ञानसंपदा ।  
 तच्छिक्षितेनाध्वनैव क्रम्यते ग्रन्थिमोचने ॥  
 विलुप्तवेदविज्ञानपरिभाषासु विस्मितान् ।  
 विदुषोऽपि हतोत्साहान् वीक्ष्य संरम्भ एष मे ॥  
 विज्ञानस्यास्य लाभात्तु मा भूवन् केऽपि वञ्चिताः ।  
 इति प्रसिद्धया हिन्दीभाषयाऽप्यनुवाद्यते ॥

## आत्मपरिचयः

( ज्ञान-यात्रा )

( १ )

जयपुरराजसमादृतकविपदमास्थितवतो द्विजाग्रचस्य ।  
चातुर्वेदिकमाथुरगोकुलचन्द्रस्य तनुजन्मा ॥

( २ )

वस्वग्निनन्दचन्द्रप्रमितेऽब्दे तिथ्यसितपक्षे ।  
जातो लवङ्गिदेव्या जठराज्जयपत्तने दिगङ्गतिथौ ॥

( ३ )

कविवरधुर्यपितामहजीवनलालेन सम्यगुपनीतः ।  
जयपुरसंस्कृतविद्याशालामासेव्य लब्धसद्विद्यः ॥

( ४ )

शास्त्रप्रवेशमाप्तो महात्मनो जानकीलालात् ।  
श्रीहरिदत्तसुधीवरमुखचन्द्रात् कौमुदीं प्राप्तः ॥

( ५ )

लक्ष्मीनाथकृपालवलब्धाखिलशब्दशास्त्रसर्वस्वः ।  
शास्त्राचार्यपरीक्षे सर्वप्रथमः समुत्तीर्णः ॥

( ६ )

श्रीजीवनाथगुरुतः प्राप्तो दीक्षां च दक्षिणाम्नाये ।  
तस्यैव सुप्रसादात् समधीतन्यायसाहित्यः ॥



( ७ )

श्रीमधुसूदनविद्यावाचस्पतिपदयुगं तरीकृत्य ।  
उत्तीर्णदर्शनोदधिरासादितवेदमर्मनिधिः ॥

( ८ )

शास्त्राग्न्यध्यापयितुं व्याख्यातुं वा सनातनं धर्मम् ।  
पर्यटितविविधदेशो विद्वद्भिः प्रणयपात्रतां नीतः ॥

( ९ )

प्रत्यष्टापि च देशे संस्कृतसाहित्यमेलनं सम्यक् ।  
संस्कृतरत्नाकर इति मासिकपत्रं प्रकाशितं येन ॥

( १० )

जम्बूकाशमीराधिपदरभङ्गाधौलपुरपतिभिः ।  
जोधपुरोदयपुरपतिभिः सम्मानितो महाराजैः ॥

( ११ )

आङ्गलभारतसम्राट्पितवैदुष्यगरिष्ठपदः ।  
महामहोपाध्यायो गिरिधरशर्मा चतुर्वेदः ॥

( १२ )

जयनगरराजकीये संस्कृतविद्यालये प्रथिते ।  
अध्यक्षपदे तिष्ठन् दर्शनशास्त्राणि पाठितवान् ॥

( १३ )

अल्लवूरमेंह्रीपतेरपि संस्कृतविद्यालयं शासत् ।  
धृतवांश्च राजपण्डितपदं गरिष्ठं समाद्वितयम् ॥

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय संस्थायामें  
सर्वातिशायिपदवी वाचस्पतिरिति समर्पिता यस्मै ।  
मानात् ॥

तत्रैव च विद्वांसोज्ज्वलणमार्गं सुशिक्षिता येन ।  
तत्तच्छास्त्राचार्याः समवापञ्चक्रवर्तिपदम् ॥

( १६ )

स्वातन्त्र्यमनुप्राप्ते भारतवर्षे तदीयराष्ट्रपतिः ।  
वैदुष्यमानपत्रं प्रथमं यस्मै समर्पितम् ॥

( १७ )

वार्धक्येऽपि च संस्कृतविश्वविद्यालयेनास्मै ।  
सम्मानितप्रकृष्टाध्यापकपदमर्पितं सोऽयम् ॥

( १८ )

सम्प्रति सपुत्रदारः 'कविराजोदितशिवागमाधारः ।  
निवसति वाराणस्यां ध्यायन् जगदीश्वरीं शिवोरस्थाम् ॥

❀ मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ❀  
वाराणसी ।  
आगत क्रमांक..... 2196.....  
दिनांक.....

१. स्व० म० म० पं० गोपीनाथकविराजः ।





# स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित श्री गिरिधरशर्मा चतुर्वेदीजी का साहित्य

## प्रकाशित

- |                                     |                              |
|-------------------------------------|------------------------------|
| १. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति | ११. साहित्यिक निबन्ध         |
| २. वैदिक विज्ञान                    | १२. प्रत्यालोचन              |
| ३. वैदिक वर्णव्यवस्था और श्राद्ध    | १३. छवि की किरणें            |
| ४. वेदविज्ञानविन्दुः                | १४. चतुर्वेदीसंस्कृतरचनावलिः |
| ५. पुराण परिशीलन                    | १५. प्रमेयपारिजातः           |
| ६. उपनिषद् परिशीलन                  | १६. पुराणपारिजातः            |
| ७. भारतीयदर्शनों में आत्मा          | १७. ब्रह्मसिद्धान्तः         |
| ८. गीता व्याख्यानमाला १-३ भाग       | १८. महर्षिकुलवैभवम्          |
| ९. भगवान् श्रीकृष्ण और शिवतत्त्व    | १९. निबन्धादर्शः             |
| १०. आत्मकथा और संस्मरण              | २०. महाकाव्यसंग्रहः          |
|                                     | २१. दर्शन अनुचिन्तन          |

## प्रकाश्य

- |                                       |                                |
|---------------------------------------|--------------------------------|
| १. पुराणविद्या                        | ६. वेद और ऋषि                  |
| २. भारतीयदर्शन परिशीलन                | ७. संस्कृत महाकाव्य परिशीलन    |
| ३. प्राचीन शब्दशास्त्र और उसके आचार्य | ८. स्मृति परिशीलन              |
| ४. भारतीय वर्णव्यवस्था                | ९. पत्र-व्यवहार संग्रह         |
| ५. पितृतत्त्व और श्राद्ध              | १०. प्रत्यभिज्ञातन्त्र परिशीलन |